मुद्रक—

मनोरंजन प्रेस,

जयपुर।

❀ श्रीः ❀

# प्रकाशक का वक्तव्य

दुर्गापाठ, हमारे नित्य के पाठकी धर्म पुस्तक है। जो स्वयं पाठ नहीं कर सकते वे ब्राह्मणों से पाठ कराते हैं। किन्तु संस्कृत में होने से जनता इसके अर्थ और अभिप्राय से उतना लाभ नहीं उठा सकती; अतः इसके हिन्दी अनुवाद की, और वह भी ऐसे अनुवाद की जो मन्त्रों के अनुसार हो, अत्यन्त आवश्यकता थी। पं० श्री सूर्यनारायण जी चतुर्वेदी ने उस कमी की पूर्ति करके हिन्दी तथा हिन्दू-जनता के धन्यवाद के पात्र बने हैं। "दुर्गापाठ" के अनुवादक चतुर्वेदीजी का संक्षिप्त परिचय देदेना आवश्यक प्रतीत होता है—क्योंकि हमें कृतज्ञता प्रकाशन की सबसे सरल रीति यही प्रतीत होती है।

राजपूताना के प्रसिद्ध नगर जयपुर के गौड ब्राह्मणों में चौबे नामक प्रसिद्ध वंश में, पौष शुक्ला पूर्णिमा सं० १९५५ में चतुर्वेदीजी का जन्म हुआ। आपका नाम श्री सूर्यनारायणजी चतुर्वेदी है, कविता में उपनाम 'दिवाकर' है। आपके वृद्धप्रपिता-पड़बाबा-पं० श्री रामचन्द्रजी चौबे प्रसिद्ध—वेदान्ती और भगवती के

परम भक्त थे। जिनके गुणों एवं त्याग से मुग्ध होकर, जयपुर के स्वर्गीय महाराजा श्री रामसिंह जी ने उनका पूर्ण सत्कार किया और उदक में उनके वंश के लिए भेंडोली नामक ग्राम प्रदान किया। आपके प्रपिता-बाबा-पं० श्री नाथूरायण जी चतुर्वेदी प्रसिद्ध तान्त्रिक विद्वान् तथा मन्त्र शास्त्री थे। जिन्होंने 'हनुमत्पंचांग' तथा 'नवरात्रार्चन पद्धति' और 'गायत्री कल्पलता' को संग्रह तथा सम्पादित किया था। जिनमें पहिले २ ग्रन्थ श्री वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित तथा मुद्रित हुए थे। तीसरा एक बृहत्काय ग्रन्थ है जो अभी अमुद्रित है। वेद तथा शास्त्रों में जहां भी गायत्री से सम्बन्धित मन्त्र, स्तोत्र इत्यादि हैं वे सब इस ग्रन्थ में अति मनोहारिणी शैली से संग्रहित हैं। आपके पिता पं० श्री गणेशलालजी चतुर्वेदी भी एक होनहार युवक थे, किन्तु वे युवावस्था में ही कैलाश यात्रा करगये। चतुर्वेदी जी को उनके पिता तथा प्रपिता दुधमुंहा बच्चा छोड़कर शिवधाम पधारे थे। तब से आपकी पितामही ( दादी जी ) ने ही आपका लालन पालन किया तथा उचित शिक्षा दी और योग्य विद्वानों से दिवाई। जिन्हें आपकी पितामही के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे सबही कहते हैं कि ऐसी धैर्य शलिनी तथा व्यवहार और नीति निपुणा महिला आजकल बहुत कम देखने व सुनने में आती हैं। चतुर्वेदीजी हिन्दीभाषा के अत्यन्त प्रेमी और सु लेखक हैं यद्यपि आप अपनी कृतियाँ प्रकाशित करने कराने में संकोच करते हैं

फिर भी मित्रों के अनुरोध से कभी २ किन्ही मासिक पत्रों में आपकी कविताएँ देखने में आही जाती है। आपका स्वभाव बड़ाही सरल और सौम्य है, साथही आप बड़े मिलनसार सहृदय व्यक्ति हैं।

अनुवाद कैसा रहा इस पर सम्मति देना मेरा काम नहीं, इसपर कुछेक प्रसिद्ध विद्वानों की सन्मतियां अन्त में दी गई है। अधिक पाठकगण स्वयं विचारलें।

प्रूफों के संशोधन में दृष्टि दोष से कोई अशुद्धियां रहगई हों तो पाठक सुधारलें और हमें सूचित करदें। जिससे द्वितीय संस्करण में ठीक हो सकें।

**शक्तिसदन, जयपुर**
नवरात्र आश्विन
सं० १९९१ वि०

विनीत
**श्री ईश्वरीप्रसाद नौटियाल**
(व्यवस्थापक सत्साहित्य कार्यालय)

॥ श्रीः ॥

# समर्पण

## सर्वाद्या सर्वमयी सर्वाधारा

## श्री महा शक्ति के

चरणों में

समर्पित

दीन "दिवाकर" की विनय सुनिये श्री जगदम्ब ! ।
सत्यसिंह मन–कामना पूर्ण करो अविलम्ब ॥१॥

# प्राक्कथन ।

---

यादेवी सर्व भूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोः नमः ।

सत्य सनातन शक्ति का महत्व, प्राणिमात्र से अविदित नहीं है। यावन्मात्र प्रत्यक्ष तथा परोक्ष पदार्थ ब्रह्माण्ड में है, उन सब का केवल शक्ति से ही अस्तित्व है। शक्ति ही सर्वव्यापक तथा प्रत्यक्ष है। केवल शक्ति ही ईश्वरत्व रूप से ईश्वर का अस्तित्व रखती है। अतः प्राणिमात्र से शक्ति सदा वन्दनीय है।

ऋग्वेदान्तर्गत देवी सूक्त में श्रीशक्ति का महत्व इस प्रकार प्रगट हुआ है।

"ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यह मादित्यै रुत विश्व देवैः।
अहं मित्रा वरुणो भा विभर्म्यह मिन्द्राग्नी अह मश्विनौभा"।

(ऋ० १० । १२५ । १ ।)

भगवान् श्री शंकराचार्य, सौन्दर्य लहरी में श्री शक्ति के महत्व को यों व्यक्त करते हैं—

"शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्
नचे देवं देवो न खलु कुशलः स्पंदितु मपि।
अतस्त्वा माराध्यां हरि - हर - विरंच्यादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृत पुण्य प्रभवति", । १ ।

ब्रह्म सूत्र शांकर भाष्य में इस तरह उल्लेख किया है—

नहि तया विना परमेश्वरस्य स्रष्टृत्वं सिध्यति।
शक्ति रहितस्य तस्य प्रवृत्त्यनुपपत्ते

ब्र० सू० शां० भा० २-२-२४ )

सम्पूर्ण चराचर जगत की आदि भूत शक्ति ही है। यह तत्व, उपनिषद् मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं। यथा—

देवी ह्येकाऽग्र आसीत्। सैव जगदण्डमसृजत्।
तस्या एव ब्रम्हा अजीजनत्। विष्णु रजीजनत्।
सर्व मजीजनत्। सैषा परा शक्तिः। ( वह्वृचोपनिषद् )

श्री देवी भागवत में, भगवान् वेद व्यास लिखते हैं—

सृजसि जननि देवान् विष्णु रुद्रा ज मुख्यान्।
तैः स्थिति लय जननं कारयस्यैक रूपा ॥१॥

( देवी भागवत )

श्री मार्कण्डेय पुराण में—

सर्व स्याद्या महा लक्ष्मी स्त्रिगुणा परमेश्वरी
लक्ष्या लक्ष्य स्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥१॥

विना शक्ति के शिव भी संसार की सृष्टि में अशक्त हैं यथा—

ईश्वरो हं महादेवि केवलं शक्ति योगतः ।
शक्ति विना महेशानि सदा हं शवरूपकः ॥

( देवी भागवत )

शक्ति ही सर्व व्यापक एवं प्रत्यक्ष है । यथा—

ज्ञान शक्तिः क्रिया शक्तिः कर्तृता कर्तृताऽपिच
इत्या दिकानां शक्तीना मन्तो नास्ति शिवात्मनः ।
स्पन्द शक्तिश्च वातेषु जडशक्तिस्तथो पले
द्रव शक्ति स्तथाम्भः सु तेजश्शक्ति स्तथा नले
शून्य शक्तिस्तथाकाशे भाव शक्तिर्भवस्थितौ

× × × × ( योग वासिष्ठ )

## विज्ञेपु किमधिकम ।

अनादि काल से केवल शक्ति ( आध्यात्मिक एवं शारीरिक ) का ही प्राधान्य रहा है । और आज भी विश्वमें जो देश अथवा समाज, शक्ति का सच्चा भक्त है वह अशक्त देश वा समाज के शासन करने का जन्म-सिद्ध अधिकार रखता है । भविष्य में भी जो शक्तिमान् होगा वह ही शासक पद पर प्रतिष्ठित रहेगा । शक्ति के ही गुण--भेद से अनन्त नाम हैं एवं भाषा भेद से शक्ति, "पाव-

र" ( ताक़त बल इत्यादि नामों से अभिहित होता है । उसी आद्या सर्व व्यापक , प्रत्यक्ष शक्ति का, श्रीमार्कण्डेय पुराणान्तर्गत "सप्तशती" में महत्व प्रगट हुआ है । अतः "सप्तशती" प्रत्येक व्यक्ति के लिये आदरणीय एवं पठनीय है । यह 'सप्तशती' –दुर्गा पाठ– सिद्धिदायक, अत्यन्त चमत्कारी और आनन्दकारी ग्रन्थ है । इस से संसार में बडे २ कार्य सिद्ध हुए हैं और होते हैं तथा होते रहेंगे ।

भारत वर्ष में पहिले जो स्थान संस्कृत भाषा को प्राप्त था वह आज हिन्दी भाषा को प्राप्त होताजारहा है । अतः 'सप्तशती' जैसी पवित्र एवं उपयोगी पुस्तक का, हिन्दी भाषा में शब्दशः पद्यानुवाद अत्यावश्यक समझकर ही यह "हिन्दी दुर्गापाठ" नामक पद्यानुवाद किया है । इस अनुवाद को सबसे बडा हेतु भगवती की भक्ति और प्रसन्नता है जिसहेतु को मैं लिखना न चाहकर भी लिखता हूँ । आर्ष ग्रन्थ का, पद्यमय शब्दानुवाद करने में किन २ कठिनाइयों का सामना करना पडता है । यह भुक्त भोगी विद्वान् ही सम्यक्तया समझ सकते हैं ।

मानव जीवन भूलों से भराहुआ है । फिर मुझ जैसे अल्पज्ञ से भूलें होना विशेष आश्चर्य की बात नहीं है, तथापि सहृदय विद्वान् पाठकों तथा समालोचकों से विनम्र प्रार्थना है कि, मेरी भूलों के लिए मुझे सप्रमाण सूचित करने की अवश्य कृपा करें । ऐसा

होने परही मैं अपने श्रमको सफल समझूंगा। और यदि पाठकों ने अवसर दिया तो द्वितीय संस्करण में, उन भूलों के निराकरण का प्रयत्न करूँगा।

## कृतज्ञता ज्ञापन।

श्री ६ श्री सत्संप्रदायाचार्य महामहोपाध्याय श्री दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी ( सन्मार्ग प्रवर्तक ) श्रीयुत विद्याभूषण पु० श्री हरीनारायण जी बी० ए० ( सत्कर्म प्रेरक ) श्रीयुत प्रिय मित्र आशुकवि, कविभूषण श्री हरिः शास्त्री ( संशोधक ) तथा मान्य विद्वानों और मित्रों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करता हूँ।

शक्तिसदन, जयपुर।
नवरात्र आश्विन, सं. १९९१ वि.

श्री शक्ति चरण सेवक
श्री सूर्यनारायण चतुर्वेदी
" दिवाकर "

❀ श्रीः ❀

# हिन्दी दुर्गा-पाठ

## पहला अध्याय प्रारम्भ ।

### ध्यान

जो दश पद, मुख रखे करों में,
खड्ग, चक्र, मुद्गर, शर, चाप,
परिघ, त्रिशूल, भुशुण्डी, नर-शिर,
शंख धरे, ब्रह्माने आप ।

भजी जिसे, मधु-कैटभ वध हित,
हरिको निद्रित होते जान,
उसी त्रिनयना, भूषित, नील,-
छवि काली का करता ध्यान ॥

१—श्रीमार्कण्डेय ने कहा—

सूर्य-पुत्र सावर्णि नामका,
जो अष्टम मनु हुआ उदार।
उसका उद्भव सुनिये मुझसे,
कहता हूँ करके विस्तार॥

२

बड़भागी सावर्णि वही ज्यों,
जगदम्बा की कृपा विशाल-।
पाकर, रविका सुतहो जगमें,
हुआ सु मन्वन्तर अधिपाल॥

३

स्वारोचिष मनुके अन्तर में,
पहिले चैत्र वंश में तात!।
सुरथ नाम भूपाल हुआ था,
सब भूमण्डल में विख्यात॥

४

पुत्र तुल्य निज प्रजा पालते-,
हुए उसी नर-पति से, द्वेष-
रखते हुए, शत्रु बन बैठे,
कोलाध्वंसी मनुज विशेष॥

५

तीक्ष्ण दण्ड मतिवाले उसका,
उनसे युद्ध हुआ अति घोर।
थोड़े भी उन रिपुओं से वह,
रण में हारा नृप-शिर-मोर॥

६

तब निज पुरमें आया वह नृप,
रहा स्वभूमी का ही कान्त।
हुआ प्रबल रिपुओं से तोभी,
महाभाग वह फिर आक्रान्त॥

७

निजपुर में रहते भी, निर्बल,
उस राजाके खल बलवान।
दुष्टात्मा सचिवों ने लूटा,
सैन्य और धन पूर्ण निधान॥

८

तब मृगया करने के मिषसे,
वह नृप होकर मनमें दीन।
चढ़ घोड़े पर गया अकेला,
घन-जंगल में प्रभुता हीन॥

९

उसने वहाँ एक द्विज मेधा,–
ऋषिका आश्रम देखा शान्त ।
मुनि शिष्यों से शोभित जिसमें,
श्वापद् थे निर्वैर नितान्त ॥

१०

किया वास कुछ काल वहाँपर,
उस मुनिसे पाकर सत्कार ।
इधर उधर मुनिके आश्रम में,
फिरता था वह गुण-आगार ॥

११

फिर मन से ममता में फँसकर,
यों सोचने लगा वह दीन ।
जो पहले पूर्वज पालित था,
वह पुर मुझसे हुआ विहीन ॥

१२

धर्म पूर्ण उन खल भृत्यों से,
पालित होता है अथवा न ।
क्या जाने मेरा वह हाती,
शूर प्रधान सदा मदवान ॥

१३

मेरे रिपुओं के वश होकर,
क्या, क्या पाता होगा भोग।
नित प्रसाद धन भोजन द्वारा,
जो थे मेरे अनुगत लोग॥

१४

वे सब निश्चय और नृपोंकी,
सेवा करते होंगे आज।
करते रहते खर्च निरन्तर,
वही अपव्यय-शील समाज॥

१५

दुखसे संचित किया आहु वे,
नष्ट करेंगे कोश विशाल।
ऐसी और अन्य भी बातें,
सोचा करता सदा नृपाल॥

१६

वहाँ एक वैश्य को देखा,
राजा ने आश्रम के पास।
पूछा उसे, कौन ? तुम, वन में,
आने का क्या कारण खास ?॥

१७

शोक सहित से क्यों दिखते हो,?
क्यों हो आप उदास समान ?।
प्रेम पूर्व यों कहे हुए उस,
भूप वचन पर देकर ध्यान ॥

१८

विनय नम्रहो उस राजाको,
वह यों बोला वैश्य सुजान ।

१९

वैश्य ने कहा—

वैश्य समाधि नाम वालामैं,
उपजा धनी वंशके बीच ।
मुझे वहिष्कृत कर बैठे हैं,
धन लोभी सुत, दारा, नीच ॥

२०

स्त्री, पुत्रों ने छीन लिया है,
धन मेरा, अब हूँ धन हीन ।
हो निरस्त, विश्वस्त बन्धुओं-,
से वन में फिरता हूँ दीन ॥

२१

वसते हुए यहाँ अब मुझको,
उन पुत्रोंके सु समाचार ।
मालुम होते नहीं, कि मेरा,
सकुशल भी है स्त्री, परिवार ॥

२२

क्या उनके है क्षेम गेह में, ?
या कल्याण नहीं इस काल ।
क्या मेरे सुत सच्चरित्र हैं, ?
दुश्चरित्र या हैं, क्या हाल ?॥

२३—राजा ने कहा—

जिनसे हुए बहिष्कृत तुम हो,
लोभी वे दारा सुत वित्त ।
फिर उनसे किस हेतु आपका,
स्नेह बाँधता है यह चित्त ? ॥

२४—वैश्य ने कहा—

राजन् ! जैसा कहते हो वे,
सच हैं मुझमें सभी विचार ।
मैं क्या करूँ हृदय यह मेरा,
निठुराई न करे स्वीकार ? ॥

२५

जिन लालचियों ने तज सारा,
पति, परिवार, पिता का प्रेम।
किया वहिष्कृत मुझको, फिर भी,
मैं चाहता उन्हीं का क्षेम॥

२६

क्यों मैं इसको जान बूझकर,-
भी, न जानता हूँ? मतिमान!।
उन विपरीत बन्धुओं से भी,
मेरा मन अतिशय रतिवान॥

२७

उनके लिए निसाँस गिराता,
रहता मानस दुख के साथ।
प्रीतिहीन उनमें मन मेरा,
निठुर न होय करूँ क्या? नाथ!॥

२८-श्रीमार्कण्डेय ने कहा—

हे द्विज! फिर वे, दोनों उस मुनि,-
के, समीप जा पहुँचे साथ।
वह समाधि नामक वर बनिया,
और सुरथ उत्तम नरनाथ॥

२९

न्याय पूर्व वे यथायोग्य उस,
मुनि से करके प्रेमालाप।
वे दोनों नृप और वैश्य, कुछ,
करते रहे कथाएँ आप॥

३०—राजा ने कहा—

एक बात मैं आज आपसे,
सुना चाहता हूँ भगवान॥
चित्त निरोध विना जो मेरे,
मनके दुखका हुई निदान॥

३१

निजको राज्य-विहीन जानकर,-
भी उसके अंगों के बीच।
मूर्ख समान फँसा ममता में,
यह क्या मुनिवर! बन्धन नीच॥

३२

और एक यह भी, सुत, दारा,
भृत्यगणों से पा फटकार।
परिजन हीन हुआ भी उनमें,
स्नेह कर रहा बारम्बार॥

३३

यों मैं और वैश्य यह दोनों,
अधिक दुखी हैं मुने सुजान !
स्पष्ट दोष-परिपूर्ण-विषय में,
भी ममता से खिंचे महान ॥

३४

यह किससे है? महाभाग ! जो,
ज्ञानी के भी मोह अमन्द ।
इसकी और मूढ़ता मेरी,
हैं विवेक से दोनों अन्ध ॥

३५—ऋषि ने कहा—

योंही सारे जन्तुमात्रको,
होता है विषयों का ज्ञान ।
और विषय सब भिन्न भिन्न हैं,
महाभाग तू यह सच जान ॥

३६

कुछ प्राणी हैं दिन में अन्धे,
कई रातमें अन्धे जान ।
कुछ प्राणी निस दिन ही अन्धे,
कितनों ही की दृष्टि समान ।

३७

नर ज्ञानी हैं, सच तो भी है,
उनको ज्ञान सहित अज्ञान।
क्योंकि ज्ञान वाले तो जगमें,
पशु, पक्षी, मृग सबको ज्ञान॥

३८

जो मनुजों को ज्ञान, वही है,
मृग पशु पक्षी गण का बोध।
जो स्नेहादिक ज्ञान उन्हें वह,
दोनों में समकर परिशोध॥

३९

देख ज्ञान होनेपर भी ये,
पक्षी निज शिशुओं को आप।
कण देते हैं स्वयं क्षुधित भी,-
हुए, मोहकी खाकर छाप॥

४०

ये मानव भी अभिलाषाएँ,
रखते निज पुत्रों की ओर।
प्रत्युपकार लोभ से ही यह,
क्यों न देखते नृप सिरमोर॥

४१

तो भी ममता के चक्कर में,<br>
फँसा विमोहगढ़े के बीच।<br>
पटके इन्हे जगत स्थिति करणी,<br>
मायाकी प्रभुता ने खींच॥

४२

इसमें कुछ भी अचरज मतकर,<br>
यही मोहती जग दिन रात।<br>
यही योग निद्रा जगपति श्री,-<br>
हरि की माया है हे तात!॥

४३

बलसे कर आकृष्ट भगवती,<br>
देवी माया महा विशाल।<br>
वही ज्ञानियों के भी मनको,<br>
मोहित करती है तत्काल॥

४४

इस सारे चर अचर जगतकी,<br>
रचना करती वही सुजान।<br>
वरदायिनी प्रसन्न हुई वह,<br>
मुक्ति हेतु है यह सच मान॥

४५

वही सनातन परमा विद्या,
वही मुक्ति की सेतु सुरूप।
वही ईश्वरों की महेश्वरी,
है संसृतिका बन्ध अनूप ॥

४६—राजा ने कहा-

जिसे महामाया कहते वह,
देवी कहो कौन? भगवान!।
कैसे उपजी है वह उसका,
क्या है कर्म? विप्र मतिमान! ॥

४७

जो स्वभाव उस देवी का हो,
जो उत्पत्ति और जो रूप।
सुनना सभी चाहता हूँ मैं,
तुमसे हे ब्रह्मज्ञ! अनूप ॥

४८—ऋषि ने कहा-

जगन्मूर्त्ति वह नित्य भगवती,
रचा उसीने सब संसार।
तोभी उसका उद्भव मुझसे,
सुनिये राजन् बहुत प्रकार ॥

४९

वह देवों के कार्य सिद्धि के,-
लिए प्रगट होती जिसकाल।
तब नित्याभी वह, उपजी यों,
जगमें कहलाती नरपाल !॥

५०

प्रभु श्रीहरि भगवान, शेषको,
शय्या कर, जब था कल्पान्त।
एक वारिमय जगमें यौगिक,
निद्रा लेने लगे नितान्त॥

५१

विष्णु कानके मलसे उपजे,
तब दो घोर असुर विख्यात।
मधु, कैटभ नामक वे विधि को,
उद्यत हुए मारने तात !॥

५२

हरिके नाभि कमल में स्थित वह,
ब्रह्मा सकल प्रजा आधार।
देख क्रूर उन दो असुरों को,
और विष्णुको सुप्त निहार॥

५३

उसी योग निद्राकी स्तुति अब,
लगा सुनाने धर अवधान।
हरिको चेत कराने को वह,
जिसका विष्णु नयन पर स्थान॥

५४

विश्वेश्वरी जगत की माता,
जो करती है स्थिति संहार।
जो भगवती ज्योतिमय जगपति,-
की निद्रा है अतुल अपार॥

५५—ब्रह्मा ने कहा—

तुम स्वाहा तुम स्वधा तुम्ही हो,
वषट्कार तुमही स्वर रूप।
अमृत तुम्ही अक्षर हो नित्या,
तीनो मात्रा तुम्ही अनूप॥

५६

आधी मात्रा जो स्थित नित्या,
जिसका होता नहीं उच्चार।
वह तुमही हो तुम सावित्री,
तुमहो जननी देवि उदार॥

५७

तुम्ही विश्वको धारण करती,
तुम्ही बनाती जगत सदैव।
पालन करती हो इसको तुम,
भक्षण करती तुम्ही तथैव॥

५८

रचना समय सृष्टिरूपा तुम,
पालन विधि में तुम स्थिति रूप।
जगन्मयी मा! तूही जग के,
अन्तकाल में संहृति रूप॥

५९

विद्या महा महामाया तुम,
महती मति स्मरण की शक्ति।
महामोह तुम महती देवी,
तुमही महा आसुरी शक्ति॥

६०

सकल विश्वकी प्रकृति तुम्ही हो,
गुण उपयोग कारिणी मात!।
कालरात्रि तुम महारात्रि तुम,
मोहरात्रि तुम दारुण रात॥

६१

तुम श्री तुम ईश्वरी तुम्ही हो,
    तुम्ही बुद्धि हो बोध निदान।
लज्जा पुष्टि तुष्टि तुमही हो,
    तुम्ही शान्ति तुम क्षमा महान॥

६२

खड्ग, त्रिशूल धारिणी घोरा,
    गदा, चक्रवाली हो आप।
शंख, भुशुण्डी, परिघ, वाण युत,
    हाथों में रखती हो चाप॥

६३

तुम प्रशान्त अति सौम्य सकलभी,
    सौम्यों से अति सुन्दर मात।
परसे पर तुमही परमा हो,
    परमेश्वरी तुम्हीं विख्यात॥

६४

सर्वमयी मा! जो कुछ दिखती,
    कहीं वस्तु जड़ चेतन जाति।
जो उन सबकी शक्ति वही तुम,
    तो स्तुति कीजावे किस भाँति॥

६५

जिस तूने जो जगका कर्त्ता,
जो पालक कारक संहार।
स्वपित किया उसको तव तेरा,
कौन करसके स्तवन उदार ॥

६६

विष्णु और मुझको शिवको भी,
जो करदेती ममता बद्ध।
इस कारण अब कौन तुम्हारी,
स्तुति करने को हो सन्नद्ध ॥

६७

अपने इन्हीं उदार प्रभावों,-
के द्वारा अब कर न विलम्ब।
दुराधर्ष मधु कैटभ दोनों,
असुरों को मोहित कर अम्ब !!!

६८

इस जगदीश्वर अच्युत हरि को,
कृपया बोध करादे तूर्ण।
इन असुरों के वध करने का,
इसको ध्यान दिलादे पूर्ण ॥

६९—ऋषि ने कहा—

यों स्तुत हुई विधाता से जब,
देवी शक्ति तमोगुण पूर्ण।
हरि प्रबोध के लिए तथा मधु,
कैटभ के मारण हित तूर्ण॥

७०

तब हरिकी आँखें, मुख, नासा,
हृदय और उरसे तत्काल।
होकर प्रगट विधाता-सन्मुख,
खड़ी हुई धर रूप विशाल॥

७१

तब जगदीश्वर हरि ने उससे,
हो प्रमुक्त करके उत्थान।
एकार्णव में शेष शयन से,
फिर देखे दो दैत्य महान॥

७२

मधु, कैटभ नामी दुष्टात्मा,
अतिही वीर पराक्रम युक्त।
कोप भरी शोणित दृगवाले,
ब्रह्माके बधमें उद्युक्त॥

७३

उठकर फिर उन दोनों से श्री,-
हरि ने किया घोर संग्राम।
पाँचहजार वर्ष तक करते,
बाहु प्रहार, न लिया विराम॥

७४

मोहित हो उस माया से वे,
बल मदमाते दोनों दुष्ट।
बोले केशवको, वर माँगो,
हम रणसे तुमपर हैं तुष्ट॥

७५—भगवान ने कहा—

हो प्रसन्न तो तुम दोनोही,
मुझसे मारे जाओ आज।
यही चाहता हूँ वर मैं तो,
और वरों से मुझे न काज॥

७६—ऋषि ने कहा—

ऐसे छले हुए दोनों वे,
तब सब जगको वारि प्रधान-।
देख, वाक्य बोले हरि को यों,
सुनिये कमल नयन भगवान॥

७७

वहाँ मारिये हमको भूपर,<br>
जहाँ न जल संयुत हो स्थान।

७८

ऋषि ने कहा—

"ऐसा हो" यों शंख, चक्र युत,<br>
गदा धरे हरिने कह बात।<br>
रख जांघा पर उन दोनों को,<br>
शीश चक्र से काटे, तात!॥

७९

ऐसे यह उत्पन्न हुई फिर,<br>
ब्रह्मा से स्तुत हुई तुरंत।<br>
इस देवी का फिर कहता हूँ,<br>
सुन नरपाल प्रभाव अनन्त॥

॥ पहला अध्याय समाप्त हुआ॥

# दूसरा अध्याय प्रारम्भ

## ऋषि ने कहा—

१

देव और असुरों में पहले,
युद्ध हुआ सो वर्ष विशेष।
दानवेश था महिषासुर जब,
और पुरन्दर था देवेश॥

२

महावीर्य असुरों ने उसमें,
सुर सेनाको कर विक्षीण।
सब देवों को जीत बनगया,
सुरपति महिषासुर प्रवीण॥

३

हारे हुए देव तब सारे,
वारिज-जन्मा और प्रजेश।
ब्रह्मा को आगे कर पहुँचे,
जहाँ विष्णु थे और महेश॥

४

जैसे हुई सभी ज्यों की त्यों,
महिषासुर की महा कुचाल।
सब देवों का परिभव पूर्वक,
उन्हें सुनादी बना विशाल॥

५

रवि, शशि, अग्नि, पवन, सुरनायक,
और मृत्यु अधिपति, जलदेव।
और सुरों के भी अधिकारों,-
को रखता है वह स्वयमेव॥

६

उस दुष्टात्मा महिषासुर से,
स्वर्ग वहिष्कृत हो सुख हीन।
भूतल पर यों लगे भटकने,
सब सुर जैसे मानव दीन॥

७

महिषासुर की सभी कुचेष्टा,
हमने तुमको कही पुकार।
शरण आपकी समझ पड़े अब,
उसके बध का करो विचार॥

८

इस प्रकार देवों की बातें,
सुनकर मधुसूदन भगवान् ।
और शंभु ने किया कोप बहु,
टेढ़ी करके भौंह महान ॥

९

क्रोधपूर्ण जब हुए अधिकतर,
विष्णु विधाता और महेश ।
तब उनके बदनों से निकला,
अति चमकीला तेज विशेष ॥

१०

और, और इन्द्रादि सुरों के,
तनसे भी हो प्रकट महान ।
मिलकर हुआ सभी तेजों का,
एक रूप वह तेज निधान ॥

११

महाकूट वह हुआ तेजका,
जलते हुए पहाड़ समान ।
देखा उन देवों ने ज्वाला,-
ओं से व्याप्त दिगन्त महान ॥

१२

वहाँ अतुल वह तेज पुञ्ज, उन
देवों के शरीर से प्राप्त।
एकत्रित वह नारी रूपी,
हुआ कान्ति से त्रिभुवन व्याप्त॥

१३

जो था शिवका तेज हुआ मुख,
उससे उसका अतिही गौर।
याम्य तेजसे केश पाश, श्री-
विष्णु तेजसे भुज सब ओर॥

१४

इन्द्र तेजसे मध्य बना तब,
चंन्द्र तेजसे स्तन छवि धाम।
वरुण तेजसे जङ्घा ऊरू,
भूसे हुआ नितम्ब ललाम॥

१५

ब्रह्मतेजसे चरण अँगुलियाँ,
सूर्य तेजसे बनी सुडोल।
वसुओं से करकी अंगुलियाँ,
नासा धनपति तेज अमोल॥

१६

हुए प्रजापति की छविसेही,
उस देवीके सुन्दर दन्त।
उसके तीनों नेत्र बनेथे,
पाकर पावक तेज अनन्त॥

१७

भौंहें सन्ध्या-तेज बनी तब,
पवन तेजसे दोनों कान।
यों वह देवी हुई और भी,
देवों का पा, तेज महान॥

१८

सब देवों की तेज राशि से,
आविर्भूत हुई स्वयमेव।
उसे देख महिषासुर पीडित,
अधिक प्रसन्न हुए सब देव॥

१९

उसके लिए प्रथम शंकरने,
शूल, शूलसे दिया निकाल।
और कृष्णने चक्र चक्रसे,
करके प्रगट दिया तत्काल॥

२०

शंख वरुणने दिया उसे शुचि,
और वह्नि ने दी शुभ शक्ति।
चाप और शर पूरित तरकस,
दिये पवनने उसे स भक्ति॥

२१

वज्र, वज्र से पैदा करके,
दिया सुरेश्वर ने सुविशाल।
दिई इन्द्र ने घंटा रवयुत,
ऐरावत गजसे तत्काल॥

२२

यमने दिया दण्ड, जलपति ने,
दिया प्रगट कर सुन्दर पाश।
माला उसे प्रजापति ने दी,
विधि ने दिया कमण्डल खास॥

२३

रोम रोममें उसके रवि ने,
अपनी किरणें भरी विशाल।
दिया कालने उसको उज्वल,
खड्ग और अति निर्मल ढाल॥

२४

क्षीरोदधिने उसको नूतन,
दो साड़ी दी मौक्तिक हार।
और दिव्य चूडामणि कुण्डल,
युग कंकण भी प्रभा उदार॥

२५

उज्वल अर्धचन्द्र अति सुन्दर,
सभी भुजाओं में केयूर॥
पदमें नूपुर और गले में,
कण्ठ विभूषण छवि भरपूर॥

२६

सभी अँगुलियों में अँगुली के,
भूषण दिए मनोहर और।
दिया विश्वकर्मा ने उसको,
उज्वल फरसा अतिही घोर॥

२७

कवच अभेद्य अमोघ उसीने,
दिए अस्त्रभी बहुत प्रकार।
वक्ष और सिर पर मालादी,
जो देती थी सदा बहार॥

२८

दिया जलधि ने उसको सुन्दर,
शोभित एक कमल का फूल
हिम-गिरी ने दी सिंह सवारी,
और रत्न बहुधा सुखमूल ॥

२९

धनपति ने अद्भुत मदिरा से,
भरा हुआ पीने का पात्र।
भुजगेश्वर ने जो भूतल का,
है आधार एक ही मात्र ॥

३०

दिया महामणियों से भूषित,
उसे मनोज्ञ नागमय हार।
यों देवों से पाकर देवी,
भूषण आयुध बहुत प्रकार ॥

३१

सन्मानित हो अट्टहास वह,
करने लगी शिवा तत्काल।
उसके घोर नादसे सारा,
नभ छागया तुरन्त विशाल ॥

३२

बढ़ते हुए न माते उससे,
उठा घोर प्रति शब्द महान।
सब लोगों में क्षोभ हुआ अति,
काँप उठे सब वारि विधान॥

३३

चलित हुई वसुधा गिरिवर भी,
हिलने लगे अनेक प्रकार।
सिंह वाहिनी उस अम्बाको,
कहते थे सुर, जय बहु वार॥

३४

भक्ति नम्र होकर मुनिगण भी,
लगे सुनाने स्तुति, कर गान।
जब देखा यों दैत्यगणों ने,
क्षुब्ध हुआ त्रैलोक्य महान॥

३५

उठे सभी ले अस्त्र शस्त्र निज,
सेनाएँ करके तय्यार।
आः! क्या है? यों कह महिषासुर,
क्रोधित होकर वाक्य प्रचार॥

३६

दौड़ा उसी शब्दको तककर,
संगलिए दानव परियास।
देखा देवी को फिर, जिसने,
किया प्रभा से त्रिभुवन व्यास॥

३७

चरण दाव से मही झुकाती,
करे मुकुट से नभ को पार।
क्षुब्ध किए पाताल लोक सब,
जिसने कर धनु का टंकार।

३८

दशों दिशाएँ व्यास कररही,
फैलाके निज भुजा हजार।
फिर उस देवी का असुरों से,
होने लगा प्रयुद्ध अपार॥

३९

जिसमें हुए अस्त्र शस्त्रों से,
दीस दिगंतर चारों ओर।
इस प्रकार देवी का असुरों-
से प्रारम्भ हुआ रण घोर॥

४०

लड़ा महिष का सेना नायक,
चिन्तुर नामक दैत्य महान ॥
चतुरंगिणी साथ ले सेना,
चामर दैत्य महा बलवान ॥

४१

लड़ा उदग्र नामका दानव,
रथले सँगमें साठ हजार ।
एक कोटि ले दैत्य महा हनु,
लड़ने लगा अनेक प्रकार ॥

४२

और पचास कोटि रथ ले, रण,-
ठाना असिलोमाने, तात ! ।
साठ लाख रथ लेकर वास्कल,
करने लगा युद्ध में घात ॥

४३

हाती घोड़े कई हजारों,
ले स्वसंग परि वारित नाम ।
कोटि रथों से परि-वारित हो,
करने लगा वहाँ संग्राम ॥

४४

और पचास कोटि रथ सेना,
अपने सँगले महा विशाल ।
उस संग्रामभूमि में आकर,
दानव लड़ने लगा चिड़ाल ॥

४५

और, और भी वहाँ अनेकों,
रथ हाती घोड़ों के वृन्द ।
साथ लिए देवी से लड़ने,-
लगे समस्त निशाचर मन्द ॥

४६

यों हाती रथ, घोड़े, पैदल,
कोटि करोड़ हज़ारों खास ।
उस रणमें लड़ती थी, दानव,
नामक महिषासुर के पास ॥

४७

तोमर, भिन्दिपाल, बरछी, असि,
मूसल, फरसा, पट्टिश नाम ।
शस्त्रों के द्वारा देवी से,
करने लगे दैत्य संग्राम ॥

४८

किन्ही दानवों ने तो बरछे,-
फेंके और किन्ही ने पाश।
खड्ग चलाकर लगे कई ख्वल,
उस देवी के वध में खास॥

४९

फिर उस काल चण्डिका देवी,-
ने भी निज नाना विध अस्त्र।
लीला ही से बरस बरस सब,
उनके काट गिराए शस्त्र॥

५०

सुप्रसन्न मुख देख उसे सब,
सुर ऋषि करते थे गुण गान।
वह ईश्वरी असुर देहोंपर,
लगी छोड़ने शस्त्र महान॥

५१

केसर कँपा प्रकोपित हो वह,
हरि देवी का वाहन खास।
फिरने लगा असुर सेना में,
जैसे वनमें फिरे हुताश॥

५२

रणमें लड़ती हुई अम्बिका,-
ने ज्यो छोड़े साँस विशाल।
वेही कई हज़ार हो उठे,
गण घर रूप वहाँ तत्काल॥

५३

वे गण फरसे भिन्दिपाल से,
पट्टिश और तीक्ष्ण तलवार।
देवी से उत्साहित होकर,
करने लगे असुर संहार॥

५४

उस संग्राम महोत्सव में वे,
लगे बजाने केई ढोल।
कई मृदङ्ग बजाते थे कुछ,
लगे बजाने शंख सुडौल॥

५५

फिर रणमें वह देवी मुद्गर,
शक्ति और तलवार, त्रिशूल।
आदि अनेक अस्त्र शस्त्रों से,
करने लगी दैत्य निर्मूल॥

५६

कोई असुर गिरे देवी की,
घंटा ध्वनि से हुए अचेत।
कितनों ही को बाँध पाशसे,
खैंच बनाया भूपर प्रेत॥

५७

तीखे खड्ग प्रहारों से कुछ,
दैत्य गिरे हो दो दो खंड।
गदा घातसे मथित बहुत खल,
सोए लेकर नींद प्रचण्ड॥

५८

कई मुशल की चण्ड चोटसे,
रुधिर उगलते थे बहुबार।
भूपर पड़े बहुत से खाकर,
छाती में त्रिशूल की मार॥

५९

रणभूमी में शर समूहसे,
ढाँके गये बहुत खलराज।
सुर रिपुओं ने प्राण तजे यों,
जैसे पड़ मरते हों बाज॥

६०

भुज कटने से गिरे कई तो,
गर्दन कटे पडे बहु और।
शिर कटपड़े किन्ही के कोई,
गिरे मध्यमें कटकर घोर॥

६१

जाँघ छिन्न होनेसे कोई,
पड़े महीपर दैत्य प्रचण्ड।
एक नेत्र, भुज, पद युत होते,
कई शिवाने किये द्विखण्ड॥

६२

शिर कटने पर पड़े कई जो,
फिर वे होकर उठे कवन्ध।
और कृपाण उठा देवी से,
लगे ठानने युद्ध अमन्द॥

६३

नाँचे बहुत भाँति उस रण में,
वाद्य और लयके अनुसार।
कई कवन्ध कटे शिर के भी,
लिए शक्ति खाँडे तलवार॥

६४

ठहर ठहर यों कह देवी को,
नाचे अन्य असुर बहु बार।
जो सन्मुख आये देवी के,
उतरे वे खाँडे की धार॥

६५

मारे हुए असुर रथ घोड़ों,
और गजों से वह रणघोर।
जहाँ हुआ था वहाँ अगम थी,
धरा नहीं थी कुछ भी ठोर॥

६६

उस सेनाके बीच दैत्यगज,
और हयों की महा अथाह।
नदियाँ बह निकली थी नाना,
तत्क्षण भरती रुधिर प्रवाह॥

६७

असुरों के उस महासैन्यको,
अम्बाने क्षय किया तुरन्त।
जैसे अग्नि जलादेती है,
काष्ठ और तृण राशि अनन्त॥

६८

महासिंह वह गरज गरज कर,
हिला हिला कर जटा विशाल।
असुरों की देहों से मानो,
प्राण चुन रहा था उस काल।

६९

दानव दल से शिवागणों ने,
ऐसा किया घोर संग्राम।
जिससे इनकी तुष्ट सुरों ने,
पुष्प बरस स्तुति की अभिराम

॥ दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥

## तीसरा अध्याय प्रारम्भ

१
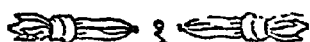
उस सेनाको निहत देखकर,
हुआ सैन्यपति चिक्षुर दंग।
कोप युक्त हो अब वह दानव,
लड़ने लगा अम्बिका संग॥

२

उसने देवो को शर वर्षा,-
करके ढाँकदिया रण बीच।
जैसे मेरु शिखर को बादल,
जलधाराओं से दे सींच॥

३

तब देवी ने कौतुक से कर,
उसके शर समूह को छिन्न।
सारे तुरँग शरों से उसके,
फिर सारथि को किया विभिन्न॥

४

काटदिया झट धनुष और ध्वज,
जो था ऊँचा और विशाल।
धनुषहीन उसके फिर तनुको,
बाँणों से बींधा तत्काल॥

५

कटा धनुष, रथ, घोड़े, सारथि,
जिस के वह दानव, दल, पाल।
दौड़ा देवी के सन्मुख धर,
कर में खड्ग भयङ्कर ढाल॥

६

वेग वान उसने ले तीखा,
खड्ग सिंह के शिर पर मार।
पास पहुँच उस देवी के भी,
वाम भुजा पर किया प्रहार॥

७

उसके भुज से टकरा कर वह,
खड्ग टूट झट गया, नृपाल!।
फिर गुस्से से रक्तनेत्र हो,
उसने लिया त्रिशूल विशाल॥

८

उस दानव ने भद्रकालि का,-
पर फैंका वह शूल महान।
नभ में गिरते तेज पुञ्ज से,
दीप्य मान रवि बिम्ब समान॥

९

आते हुए, देखकर उसको,
देवी ने फैंका निज शूल।
उससे वह त्रिशूल हो टुकड़े,
हुआ और दानव निर्मूल॥

१०

महिषासुर के उस बलशाली,
सेनापति को मरा निहार।
देवों का दुखदाई चामर,
आया हो मातङ्ग सवार॥

११

उसने भी देवी पर छोड़ी,
शक्ति, अम्बिका ने तत्काल।
कर हुङ्कार खण्ड कर उस को,
पटका भूपर प्रभा निकाल॥

१२

टूट गिरी निज शक्ति देखकर,
चामर ने फैंका फिर शूल।
कोपित हो शर मार उसे भी,
किया चण्डिका ने निर्मूल॥

१३

फिर वह सिंह उछलकर गज के,
कुम्भस्थल पर चढ़, नर नाथ !।
लड़ने लगा बाहु रण करके,
उस सुर-रिपु चामर के साथ ॥

१४

उस हाती से आ पृथ्वी पर,
वे दोनों करते संग्राम।
उग्र प्रहार कोप युत करके,
लड़ते हुए लियान विराम ॥

१५

फिर तेजी से उछल गगन में,
और कूदकर वह मृग-ईश।
थप्पड़ मार मार झट धड़ से,
दूर कर दिया चामर शीश ॥

१६

मरा उदग्र शिला वृक्षादिक,
ही से देवी—चरणों बीच।
घूँसे, दाँत, चपेटों से वह,
नष्ट होगया कराल नीच ॥

१७

कुपित शिवा निज पदाघात से,
उद्धत को कर डाला चूर्ण !
भिंदिपालसे वाष्कल शर से,
ताम्र, अन्ध को मारा तूर्ण ॥

१८

तथा उग्रमुख, उग्रवीर्य को,
और महा हनु को दे शूल।
तीन नेत्र वाली अम्बा ने,
कर डाला झट से निर्मूल ॥

१९

शिर विडालका खड्ग चलाकर,
कापासा कर डाला दूर।
दुर्धर और दुष्ट दुर्मुख को,
किया शरों से चकनाचूर ॥

२०

महिषासुर ने इस प्रकार से,
निहत हुई निज सैन्य निहार।
महिष रूप से सभी गणों को,
लगा डराने सभी प्रकार ॥

२१

मुख प्रहार से कितनों ही को,
और कईको देदे लात।
तथा बहुत को पूँछ मार से,
दे बहुतों को शृङ्गाघात॥

२२

मारा, चण्डवेग से कुछ को,
गरज, घूमके दे दे त्रास।
कितनों ही को स्वास पवन से,
पटक भूमि पर किया विनाश॥

२३

गण सेना को हटा असुर वह,
हुआ मारने हरि पर कोप।
इतना होने पर कुछ उस पर,
जगदम्बा ने किया प्रकोप॥

२४

तीक्ष्ण खुरों से भूमि खोदता,
कुपित हुता वह दानव वीर।
सींगों से ऊँचे गिरि फेंके,
और गर्जना की गम्भीर॥

२५

उसके वेगपूर्ण फिरने से,
हुई शीर्ण भू बुरे प्रकार।
अंबुधि महि को लगा डुबोने,
महिष पुच्छ की त्वा फटकार॥

२६

हिलते सींगों से प्रेरित हो,
खण्डित हुई पयोधर-न्नात।
स्वास पवन से प्रेरित होकर,
नभ से पड़े अचल बहु भाँत॥

२७

ऐसे क्रोधपूर्ण हो आते,-
हुए महिष को देख तुरन्त।
किया चण्डिका ने भी उसके,
मारण हेतु प्रकोप अनन्त॥

२८

उस ने उस दानव को बाँधा,
शीघ्र फेंक करके निज पाश।
रण में उसने भी बँधते ही,
तजी महिष की आकृति खास॥

२९

तुरत होगया सिंह, चंडिका,
जब तक उसके शिर का छेद ।
करती थी, तबतक ही झट वह,
हुआ खड्ग धर मानव भेद ॥

३०

फिर जल्दी से ही देवीने,
वेध दिया बाणों से पूर्ण ।
खड्ग चर्म के साथ दैत्य वह,
फिर होगया महागज तूर्ण ॥

३१

उसने महासिंहको खैंचा,
और चिंघाड़ें भरी अपार ।
सूँड खैंचते हुए चण्डिका,-
ने काटी कर खड्ग प्रहार ॥

३२

तब उस महा असुरने रणमें,
फिरसे धारा महिष शरीर ।
और चराचर युत त्रिभुवनको,
फिर वैसेही किया अधीर ॥

३३

तब हो कुपित जगतकी माता,
चण्डीने मद बारं बार ।
पिया और कुछ अरुणनयनहो,
किया भावयुत हास्य उदार ॥

३४

बल पौरुष मदमाते उसने,
रणमें नाना भाँति दहाड़ ।
और उठा सींगों से फेंके,
देवी के प्रति कई पहाड ॥

३५

उसके फेंके गिरिओं को वह,
शर समूह से करती चूर ।
बोली यों तब मुखसे अत्तर,
निकले मद्य गन्ध भरपूर ॥

३६—देवी ने कहा—

जब तक मैं मधु पी लेतीहूँ,
तबतक मूढ गरज क्षण और ।
मेरे तुझे मारने पर झट,
गरजेंगे सुर इसही ठौर ॥

३७—ऋषि ने कहा—

यों कहकर वह शिवा उछलकर,
महा असुर पर पद से मार।
कर आक्रमण कंठपर उसके,
किया जोर से शूल प्रहार॥

३८

पदसे दबा असुर वह अपने,
मुखसे हुआ अर्ध निष्क्रान्त।
अर्ध निकलतेको देवीने,
बलसे स्तंभित किया नितान्त॥

३९

आधा निकला भी वह दानव,
लड़ता हुआ अनेक प्रकार।
गिरादिया शिर काट भूमिपर,
उस देवी ने दे तलवार॥

४०

फिरतो भगी दैत्य सेना सब,
रणसे करती हाहाकार।
और देवताओं के गण सब,
हर्ष मनाने लगे अपार॥

४१

उस देवी की सब देवोंने,
　　स्तुति की दिव्य महा ऋषि सङ्ग ।
सब गन्धर्व गान करते थे,
　　नृत्य अप्सरा भरी उमङ्ग ॥

तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

## चौथा अध्याय प्रारम्भ ॥

१

देवी के हातों बलशाली,
हुआ महिष खल जब अवसन्न ।
और सैन्य भी नष्ट हुई तब,
इन्द्रादिक सुर हुए प्रसन्न ॥

२

कन्धा शीश झुकाए नति कर,
उस अम्बाकी स्तुति का गान ।
करने लगे दिव्य वाणी से,
रोम हर्ष से भरे महान ॥

३

जिस जगदात्म शक्ति देवी ने,
ऐसा यह जग रचा अनूप ।
जो है सारे देव गणों की,
शक्ति समूह एकही रूप ॥

४

सुर, मुनि पूज्य उसी अंबाको,
करते हैं हम सभी प्रणाम ।
परम भक्तिसे वह दुर्गा भी,
पूरित करे हमारे काम ॥

५

जिसकी अतुल महा महिमा को,
जाने नहीं विष्णु भगवान।
तथा विरंचि और शंकर भी,
कह न सके जिसका बल-मान॥

६

वह। चण्डिका सकल जगतका,
करने को निशि दिन प्रतिपाल।
और हमारे क्रूर भयों को,
हरने की मति करे विशाल॥

७

पुण्यवान पुरुषों के जो श्री,
और पुरुष जो करते पाप।
उनके लिए अलक्ष्मी, आस्तिक,
जनको जो सन्मति हो आप॥

८

सुजनों के हित श्रद्धा तू ही,
कुलीन जनकी लाज विशाल।
उसी आपको प्रणति करें हम,
देवि विश्वकी कर प्रतिपाल॥

९

रूप न शोचा जाय कहैं क्या,
यह आपका परम छवि वान।
और पराक्रम अधिक कहैं क्या,
जो असुर-क्षय- कारि महान॥

१०

असुर और सुरगण आदिक युत,
समरों में जो वीर्य निधान।
अद्भुत चरित तुम्हारे हैं हम,
उनका क्या करसकें बखान॥

११

कारण सभी जगत की त्रिगुणा,
भी तुझको हरि और महेश।
आदि न जान सकें सुर कोई,
ऐसी आप अपार विशेष॥

१२

सबका आश्रय आप जगत यह,
सकल आपका और सुरूप।
अव्याकृत हो तुम्ही परम हो,
सबसे महती प्रकृति अनूप॥

१३

जिसके उच्चारण का शुभ रव,
शुभ यज्ञों में हो अविलंब।
हवि पा होते तृप्त सुनिश्चित,
वह स्वाहा हो तुमही अंब॥

१४

वैसे ही सब पितृ-गणोंकी,
परम तृप्ति का तुम्ही निदान।
इस कारण तुम ही को कहते,
स्वधा नामसे पुरुष सुजान॥

१५

मुक्ति हेतु विद्या तुमही हो,
जो अविचिन्त्य महा व्रतवान।
ब्रह्म निष्ठ है जो निज इन्द्रिय-,
गणको वशमें रखे सुजान॥

१६

जल्द दोष हरते हैं सब जो,
करना चाहे मोक्ष विलास।
वे मुनि, देवि परम भगवति हे,
करें तुम्हारा ही अभ्यास॥

१७

शब्द-मूर्त्ति निर्मल ऋक, यजुकी,
तुम्हीं देवी परम अधार।
तथा प्रणवसे अधिक रम्य पद,
पाठ सहित तुम साम उदार॥

१८

देवी तुमही त्रयी भगवती,
विश्व भावना के हित इष्ट।
वार्त्ता भी तुमहो सब जगकी,
पीड़ा-नाशक परम प्रकृष्ट॥

१९

तुम मेधा हो जिससे जाना,
जाय सभी शास्त्रों का सार।
हो असङ्ग दुर्गा तुम नौका,
करने अगम भवोदधि पार॥

२०

लक्ष्मी तुम हरि के वक्षस्थल,-
पर करतीहो निशि-दिन वास।
गौरी तुमही हो जो करती,
चन्द्र-मौलि में स्वच्छ प्रकाश॥

२१

मन्द-हास युत निर्मल पूरे,
चन्द्र विम्ब के सदृश नितान्त ।
अति अद्भुत विशुद्ध सोनेकी,
उत्तम छवि से बढकर कान्त ॥

२२

वदन निहार तुम्हारा क्रोधित,
महिषा सुर ने कुछ न विचार ।
सहसा ही जगदम्ब ! न जानें,
कैसे तुम पर किया प्रहार ॥

२३

देवि तुम्हारा मुख निहार कर,
क्रोधित भृकुटी कुटिल कराल ।
उगते हुए चंद्रमाके सम,
जिसकी सुन्दर प्रभा विशाल ॥

२४

जो न तजे निज प्राण महिषने,
तुरत हुई यह अद्भुत बात ।
क्रोध भरे यमके दर्शन कर,
किससे जिया जाय हे मात ! ॥

२५

दवि आप अब हो प्रसन्न, हम,
सबका करने को कल्याण।
क्यों कि कोप वाली जब तुमहो,
तब करती कुल नाश महान॥

२६

यह इससे हो जान लिया है,
हमनें जो बल पूर्ण समस्त।
महिषासुर की विपुल सैन्यको,
किया आपने झट ही अस्त॥

२७

वेही धनी तथा देशों में,
वेही पाते मान विशेष।
यश उनको ही मिलै उन्हीं के,
धर्म वर्ग में गिरैं नक्लेश॥

२८

दारा, सुत, सेवक उनही के,
हो विनीत वेही जन धन्य।
जिनपर सदा अभ्युदय दाता,
रहती आप सदैव प्रसन्न॥

२९

पुन्यवान जन अति ही आदर,
पूर्वक करने को कल्याण।
प्रतिदिन करते सभी तरहके,
कर्म सदा ही धर्म निदान॥

३०

और स्वर्ग में जाते हैं फिर,
पाकर कृपा तुम्हारी मात!।
देवि! इसीसे भुवन त्रयमें,
फलदात्री तुम हो विख्यात॥

३१

स्मरण मात्रसे हे दुर्गे! तुम,
सबका भय करती हो दूर।
स्वस्थ जनों से स्मृत होनेपर,
शुभ मति देती हो भरपूर॥

३२

दुख दारिद्रय हारिणी तुमही,
और देवता कौन उदार।
सदा सरस मन से रहती हो,
करने को सबका उपकार॥

३३

इन असुरों के बध होने से,
जग सुख पावेगा अनिवार्य।
नरक गमन के लिये सदा ही,
पाप भले ही करें अनार्य॥

३४

रण भूमीमें मर मर कर वे,
जावेंगे सुरलोक निदान।
रिपुओं को माराहै तुमने,
निश्चय भगवति ऐसा मान॥

३५

दृष्टि मात्रसे क्यों न आपने,
इनका किया भस्म का ढेर।
सब असुरों को,जो इन पर यह,
शस्त्र फेंकने से की देर॥

३६

तेरे शस्त्रों से पवित्र हो,
रिपु भी जाते स्वर्ग सिधार।
अंब आपकी उनपर भी है,
ऐसी अतिही बुद्धि उदार॥

३७

महाभयङ्कर खड्ग कान्ति की,
चकाचौंधकी ओर निहार।
तथा शूलकी प्रभा पुञ्जको,
देख देखकर बारम्बार ॥

३८

दानव जो अन्धे न हुए बस,
इसमें यह ही हेतु महान।
वदन आपका देखरहे थे,
शशिसे बढकर सुधा-निधान ॥

३९

दुर्जन, दुष्कृतिहारी है यह,
देवि तुम्हारा शील अनूप।
मनसे भी अचिन्त्य समता से,
हीन तथा यह निर्मल रूप ॥

४०

सुर-बल नाशक दैत्यगणों का,
घातक है यह वीर्य अथाह।
रिपुओं परभी प्रगट कियाहै,
तुमने करुणारस प्रवाह ॥

४१

इस आपके पराक्रम की हम,
उपमा देवें किसके सङ्ग।
और कहाँ यह रूप मनोहर,
जिसे देख रिपु होते दङ्ग॥

४२

हमने, मनमें कृपा तुम्हारे,
रण में निठुराई अति घोर।
देखो, तुममें ही वरदायिनि,
त्रिभुवनमें तुमसी नहिँ और॥

४३

तीनों लोकों की रक्षाको,
इन असुरों का कर संहार।
भेजा उनको भी सुरपुरमें,
देवि! आपने रणमें मार॥

४४

और हमारा भी दानव गण-,
से उत्थित भय दिया निवार।
इससे हे जगदम्ब! तुम्हारे-,
लिए प्रणति है बारम्बार॥

४५

रक्षा करो शूलसे, हम को,
करो शूलसे भी प्रतिपाल।
और बचाओ कर घंटा ध्वनि,
तथा धनुज्या नाद विशाल॥

४६

अपना शूल घुमाके रक्षा-,
करिए पूर्वदिशा की ओर।
पश्चिम दक्षिण उत्तर में भी,
ईश्वरि! रक्षा कर सब ठौर॥

४७

तीनों लोकों में है जितने,
रूप तुम्हारे सौम्य विशाल।
तथा नितान्त घोर, उनसे हम,
तथा धराका कर प्रतिपाल॥

४८

खड्ग, त्रिशूल, गदा आदिक जो,
शस्त्र करों में रखती घोर।
उन सबसे हे अम्ब! हमारी,
रक्षा करिए चारों ओर॥

४९—ऋषि ने कहा—

यों स्तुति की देवों ने पूजा-,
भी नन्दन के पुष्प चढाय।
तथा गन्ध, चन्दन आदिक से,
अर्चित हुई जगतकी धाय॥

५०

भक्ति पूर्व सब सुरगण द्वारा,
धूपित हुई दिव्य पा धूप।
नम्र हुए देवों से बोली,
वह प्रसन्न मुख वचन अनूप॥

५१—देवी ने कहा—

कहिये देवो! मुझसे जो कुछ,
तुम्हे चाहिए वस्तु अभीष्ट।

५२—देवताओं ने कहा—

अब कुछ बाकी नहीं भगवती-,
ने सब दूर किया है कष्ट॥
जोकि हमारे इस रिपु दानव,
महिषा सुर को किया विनष्ट।
और महेश्वरि हमको फिरभी,
देना चाहो जो वर इष्ट॥

५३

जब जब याद करैं, तब तब तुम,
करिये दुःख हमारे नष्ट।
और मनुज जो इन स्तुतियों से,
करें तुम्हारे नित गुण स्पष्ट॥

५४

उसके वित्त, समृद्धि, विभवधन,
दारादिक संपद अचिरात-।
बढ़ै, इसीके लिए सदा तुम,
हम पर हो प्रसन्न हे मात!॥

५५—ऋषि ने कहा—

तुष्ट सुरों ने यों की, अपना,
करके, जगका भी कल्याण।
एवमस्तु कह, हुई भूप! वह,
भद्रकालिका अन्तर्ध्यान॥

५६

जगहित कर्त्री देवी का यह,
हुआ प्रथम जो आविष्कार।
देव शरीरों से वह मै ने,
तुम्हें सुनाया चारु प्रकार॥

५७

फिर गौरी के तनु से उसने,
　　जैसे जगमें किया प्रकाश ।
दुष्ट दानवों का मद हरने,
　　करने शुम्भ, निशुम्भ विनाश ॥

५८

लोकों की रक्षा करनेको,
　　देवों का करने उपकार ।
वह सब अब हे राजन् ! तुमको,
　　कहताहूँ मैं उसी प्रकार ॥

॥ चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥

# पाँचवाँ अध्याय प्रारम्भ

१—ऋषि ने कहा—

शुम्भ निशुम्भ नाम असुरों ने,
जो थे मद बल से उद्दण्ड।
छीन लिया सुरपति से त्रिभुवन,
और यज्ञके भाग अखण्ड॥

२

वेही रवि का हक रखते थे,
वेही शशिका भी अधिकार।
स्वत्व वरुण, यम का भी रखते,
धनपति का भी उसी प्रकार॥

३

वेही पवन समृद्धि भोगते,
वे करते वैश्वानर कार्य।
तब सुर उनसे हार, राज्यच्युत,
होकर हुए वहिष्कृत आर्य!॥

४

अधिकारों से हीन देव वे,
मिला जिन्हें उनसे अपवाद।
उसही अपराजित देवी को,
करने लगे देव मिल, याद॥

५

जिसने वह वरदान दिया था,
आपदमें स्मृति के ही साथ।
दुःख तुम्हारे सारे तत्क्षण,
दूर करूँगी हातों हात॥

६

ऐसी मति कर सुर सब पहुँचे,
परवत राज जहाँ हिमवान।
करने लगे वहाँ श्रीहरि की,
माया देवी का स्तुति गान॥

७—देवताओं ने कहा—

देवि और महादेवी को,
प्रणति शिवाको सदा प्रणाम।
प्रकृति तथा भद्रा, को नति है,
नियत उसे है तथा प्रणाम॥

८

रौद्रा, नित्या, गौरी, धात्री,
को क्रमसे है नति बहु बार।
ज्योत्स्ना को नति, इन्दुरूपिणी,
और सुखाको सुनमस्कार॥

९

कल्याणी के लिए प्रणति है,
ऋद्धि सिद्धि को करें प्रणाम।
निऋति और अद्रि लक्ष्मी को,
सर्वाणी को प्रणति सकाम॥

१०

दुर्गा और दुर्गपारा जो,
सर्वकारिणी सबका सार।
ख्याति और कृष्णा धूम्रा, को,
करें प्रणतियाँ बारम्बार॥

११

उस अति सौम्या अति रौद्राके;
लिए करें नति अनेक वार।
जगदाधार रूपकृति नामा,
देवीको है सुनमस्कार॥

१२

सकल प्राणियों में जिस देवी,-
का है श्री हरि माया नाम।
उसे प्रणति है उसे प्रणति है,
उसे प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम॥

१३

सकल प्राणियों में जो देवी,
कहलाती सु चेतना नाम।
उसे प्रणति है०

१४

सकल प्राणियों में जो देवी,
बुद्धिरूपसे रहे प्रकाम।
उसे प्रणति है०

१५

सकल प्राणियों में जो देवी,
नींद रूपसे रहे प्रकाम।
उसे प्रणति है०

१६

सकल प्राणियों में जो देवी,
क्षुधा रूपसे रहे प्रकाम॥
उसे प्रणति है०

१७

सकल प्राणियों में जो देवी,
छाँह रूप से रहे प्रकाम।
उसे प्रणति है०

१८

सकल प्राणियों में जो देवी,
शक्ति रूपसे रहे प्रकाम ॥
उसे प्रणति है०

१९

सकल प्राणियों में जो देवी,
तृष्णा होकर रहे प्रकाम ।
उसे प्रणति है०

२०

सकल प्राणियों में जो देवी,
क्षमा रूपसे रहे प्रकाम ॥
उसे प्रणति है०

२१

सकल प्राणियों में जो देवी,
जाति रूपसे रहे प्रकाम ।
उसे प्रणति है०

२२

सकल प्राणियों में जो देवी,
लाज रूपसे रहे प्रकाम ॥
उसे प्रणति है०

२३

सकल प्राणियों में जो देवी,
शान्ति रूपसे रहे प्रकाम।
उसे प्रणति है०

२४

सकल प्राणियों में जो देवी,
श्रद्धा होकर रहे प्रकाम॥
उसे प्रणति है०

२५

सकल प्राणियों में जो देवी,
कान्ति रूपसे रहे प्रकाम।
उसे प्रणति है०

२६

सकल प्राणियों में जो देवी,
लक्ष्मी होकर रहे प्रकाम॥
उसे प्रणति है०

२७

सकल प्राणियों में जो देवी,
वृत्ति रूपसे रहे प्रकाम।
उसे प्रणति है०

२८

सकल प्राणियों में जो देवी,
स्मृति सुरूपसे रहे प्रकाम ॥
उसे प्रणति है०

२६

सकल प्राणियों में जो देवी,
दया रूपसे रहे प्रकाम ।
उसे प्रणति है०

३०

सकल प्राणियों में जो देवी,
तुष्टि रूपसे रहे प्रकाम ॥
उसे प्रणति है०

३१

सकल प्राणियों में जो देवी,
मातृ रूपसे रहे प्रकाम ।
उसे प्रणति है०

३२

सकल प्राणियों में जो देवी,
भ्रान्ति रूपसे रहे प्रकाम ॥
उसे प्रणति है०

३३

सकल प्राणियों में जो देवी,
इन्द्रियगण का है आधार ॥
नमो नमो है उसे सदा जो,
सब भूतों की व्याप्ति उदार ॥

३४

चित्त रूपसे जो इस सारे,
जगमें रहती व्याप्ति प्रकाम ।
उसे प्रणति है०

३५

जो पहले स्तुत हुई सुरों से,
पूर्ण हुए सब वाञ्छित काम ॥
तथा इन्द्रसे खास दिनों में,
पूजित हुई दयाकी धाम ।

३६

वह ईश्वरी हमारे शुभकी,
कारण मङ्गल करै सदैव ॥
और अभ्युदय देवे हमको,
और आपदा हरै तथैव ।

३७

अति उद्दण्ड दानवों द्वारा,
दुखी दरिद्री हुए निकाम ।
हम सब सुरगण निज आद्याको,
आदरसे कर रहे प्रणाम ॥

३८

स्मरण किये जाने पर झट जो,
सब आपद करती है दूर ।
भक्ति भाव से झुके हुए हम,
सबको वह सुखदे भरपूर ॥

३९—ऋषि ने कहा—

जब हिम गिरि पर खडे हुए यों,
स्तुति करतेथे सब सुर साथ ।
तभी पार्वती गङ्गाजी में,
न्हानेको आई, नर-नाथ ! ॥

४०

वह सुभ्रू बोली देवों से,
किसकी स्तुति करते हो आज ।
उसके तनुसे तुरत निकलकर,
देवी यों बोली नर-राज ! ॥

४१

मेरी स्तुति करते हैं ये सब,
शुम्भ दैत्यसे दुखित अपार ।
सारे सुरगण, खल निशुम्भसे,
रणमें वैठ चुके हैं हार ॥

४२

उस गिरिजाके देह कोष से,
जो देवी निकली, हे तात ! ।
वह कौशिकी नामसे सारे,
लोकों बीच हुई विख्यात ॥

४३

उसके उद्भव होते ही वह,
गिरिजा, काली हुई प्रकाम ।
हिम गिरि पर पूजित उसका फिर,
हुआ प्रसिद्ध कालिका नाम ॥

४४

फिर उस जगदम्बाको धरते-,
हुए, मनोहर रूप उदार ।
शुम्भ, निशुम्भ दानवों के चर,
चण्ड, मुण्डने लिया निहार ॥

४५

उनने कहा शुम्भको जाकर,
कोई युवती है महाराज! ।
महा मनोहर है, हिम गिरि को,
निज छवि से चमकाती आज ॥

४६

कहीं किसीने भी न निहारा,
होगा वैसा उत्तम रूप ।
उसे जानिये तुरत कौनहै,
ग्रहण कीजिये दानव-भूप ! ॥

४७

वह स्त्रीरत्न नितान्त सुन्दरी,
द्योतित करती दिशा अशेष ।
बैठी है हिमगिरि पर, उसको,
शीघ्र देखिए हे दनुजेश ! ॥

४८

हेस्वामी ! गज, घोड़े आदिक,
रत्न और मणि आदिक खास ।
तीनों लोकों में जो हैं वे,
सब परिदीस तुम्हारे पास ॥

४६

लिया आपने सुरपालक से,
उत्तम ऐरावत गज- रत्न।
तथा कल्पतरु और लियाहै,
उच्चैश्रवा नाम हय रत्न॥

५०

और तुम्हारे घरमें शोभित,
है यह हंस समेत विमान।
अति आश्चर्यजनक ब्रह्माका,
जो है रत्न स्वरूप महान॥

५१

ले आये उस महा पद्मनिधि,
धनपति को करके आक्रान्त।
अंबुधिने अम्लान कमलमय,
माला केशर युत दी, कान्त!॥

५२

स्वर्णकान्तिकी वर्षा कर्त्ता,
वारुण छत्र तुम्हारे पास।
लिया तुम्ही ने वह रथ भी जो,
दीन प्रजापति का है खास॥

५३

और तुम्हारे भाई के घर-,
में है वारि - राज का पाश ।

५४

है निशुम्भके पास सुशोभित,
सिन्धुजात सब रत्न विशेष ।
अग्नि शुद्ध अम्बर पुनि तुमको,
दिया अग्नि ने हे दनुजेश ! ॥

५५

इस प्रकार सब रत्न हरण कर,-
लिए आपने दानव राज ! ।
युवति रत्न यह कल्याणी भी,
क्यों न ग्रहण कर लेते आज ॥

५६—ऋषि ने कहा—

शुम्भ दैत्यने चण्ड, मुण्ड की,
यह वाणी सुन, पा विश्वास ।
महा असुर सुग्रीव नामका,
भेजा असुर, भगवती पास ॥

५७

यों बोला, मेरे कहने से,
  तुम उससे यों कहना बात।
जैसे वह झटपट ही आवे,
  वैसा करो कार्य अचिरात॥

५८

वहाँ पहुँचकर वह हिमगिरिके,
  जिस शुभस्थल में रूप उदार।
वह देवी थी, उससे कहने,-
  लगा मधुरतर वचन उचार॥

५९—दूत ने कहा—

देवि! त्रिभुवन में परमेश्वर,
  एक शुम्भ है दानव राज।
उससे भेजाहुआ दूत मैं,
  पास तुम्हारे आया आज।

६०

जिसका शासन देवयोनियों,
  में फलता वे ऐक सदैव।
जिसने जीत लिए हैं सब सुर,
  सुन, उसने जो कहा तथैव॥

६१

है त्रैलोक्य सकल वश मेरे,
सुरगण सब मेरे परतन्त्र।
अलग अलग मैं सब यज्ञों का,
भाग भोगता रहूँ स्वतन्त्र॥

६२

जो हैं श्रेष्ठ रत्न त्रिभुवनमें,
वे मेरे सब वश्य अशेष।
जैसे मैंने लियाइन्द्रका,
वाहन वह गज रत्न विशेष॥

६३

जो समुद्रके मन्थ समयमें,
निकसा घोड़ा रत्न विशाल।
उच्चैश्रवा, मुझे देवोंने,
कर प्रणाम सौंपा तत्काल॥

६४

जो कुछ और सुरों के अथवा,
गन्धर्वों, उरगों के खास।
रत्नरूप थी वस्तु सभी वे,
सुन्दरि ! अब हैं मेरे पास॥

६५

देवि तुम्हें हम इस त्रिभुवनमें,
गिनते हैं शुभ रत्न स्वरूप।
इस कारण आ पास हमारे,
क्योंकि रत्नभुज हमी अनूप॥

६६

मुझको या निशुम्भ भाईको,
वर लेने का करतू यत्न।
हे चंचल कटाक्ष वाली! तू,
है इस त्रिभुवनमें स्त्रीरत्न॥

६७

मेरा आश्रय करनेसे तू,
पावेगी ऐश्वर्य उदार।
यों मति से विचार कर मेरे,
आश्रय को करले स्वीकार॥

६८—ऋषि ने कहा—

यह सुन, दुर्गा कल्याणी वह,
भाव गँभीर मन्द मुसकान।
कहने लगी भगवती देवी,
जो त्रिभुवन की एक निधान॥

६९—देवी ने कहा—

सत्य कहा है तूने इसमें,
नहीं मृषा का कुछ भी लेश।
त्रिभुवनपति है शुम्भ दैत्य फिर,
वैसाही निशुम्भ दनुजेश॥

७०

पर प्रण मैंने कियाउसे अब,
किस प्रकार से करदूँ व्यर्थ।
मन्द ज्ञानसे जो कुछ निश्चय-
है वह तूभी सुनले अर्थ॥

७१

जो मुझको ले जीत समरमें,
जो मेरा हरले अभिमान।
जो मुझसा बलशालि हो वह,
मेरा पति हो, यह सच मान॥

७२

सो आवै निशुम्भ दानवपति,
अथवा शुम्भ निशाचर राज।
मुझे जीतले फिर विलम्ब क्या,
मेरा पाणि पकड़ले आज॥

७३—दूतने कहा—

देवि ! गर्व छायाहै तुझको,
मेरे आगे यह न उचार।
शुम्भ निशुम्भ दैत्यके आगे,
ठहरे ऐसा नर न विचार॥

७४

और दानवों के भी सन्मुख,
रण में सुर न ठहरता एक।
अहो देवि ! तब उनके आगे,
तू स्त्री डट् सकती क्या एक॥

७५

रणमें जिनसे सुर इन्द्रादिक,
सबही मान चुके हैं हार।
उन शुम्भादि दानवों के तू,
सन्मुख होगी कौन प्रकार॥

७६

सो तू शुम्भ निशुम्भ पास चल,
जल्दी मेरा कहना मान।
और नहीं तो केश पकड़कर,
खैंच ले चलूँगा यह जान॥

७७—देवी ने कहा—

ऐसाही बलवान शुम्भहै,
और निशुम्भ तथैव उदार।
अब क्या करूँ प्रतिज्ञा करली,
हुआ न ऐसा पूर्व विचार॥

७८

सो तू जा मेरी ये बातें;
जो कुछ हैं वे सादर तात!।
निज स्वामी को कहदे, फिर वे,
करें युक्त जो हो अचिरात॥

पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ

---

# छठा अध्याय प्रारम्भ

१—ऋषिने कहा—

यों देवी के वचन श्रवण कर,
दूत हुआ वह कोपित पूर्ण।
जाकर दैत्यराजसे बोला,
वेही वचन बढ़ाकर तूर्ण ॥

२

उस चरके मुखसे सुनकरके,
वैसी बात शुम्भ वह तात ! ।
क्रोधपूर्ण हो दैत्य, सैन्यपति,
धूम्रनेत्रसे बोला बात ॥

३

धूम्रनेत्र तुम जाओ अपनी,
सेना को झट लेकर सङ्ग।
लावो उस दुष्टाको बलसे,
केशखैंचकर करते तंग ॥

४

जो उसका रक्षक हो कोई,
या होना चाहे उस ओर ।
चाहे सुर गन्धर्व यक्ष हो,
उसे मारदो उसही ठौर ॥

५—ऋषिने कहा—

उससे आज्ञा पाकर जल्दी,
धूम्रविलोचन सेना नाथ ।
चला शीघ्रही वह असुरों की,
साठ हजार सैन्य ले साथ ॥

६

उस देवीको देख दूतने,
हिमगिरि ऊपर करती वास ।
कहा ज़ोरसे चल निशुम्भ या,
शुम्भदैत्य नामक के पास ॥

७

मेरे स्वामी के समीप तू,
देवि ! चलेगी जो न सहर्ष ।
तो यह मैं बल से लेचलता,
हूँ केशोंका कर अपकर्ष ॥

८—देवी कहा—

दैत्यनाथका भेजा आया,
तू बल लेकर बली गँभीर ।
से मुझको लेचल तेरा,
मैं क्या करसकती हूँ वीर ॥

९—ऋषि ने कहा—

यों कह दौड़ा धूम्रविलोचन,
वह झट उस देवी की ओर
भस्म किया उसको हुंकृति से
जगदम्बाने उसही ठौर ॥

१०

तब कोपित हो दानव सेना,
जगदम्बापर आई दौर ।
बरषाये तीखे शर नाना,
शक्ति और परशे अति घोर ॥

११

फिर कोपितहो जटा धुजाता,
करके भयका नाद गम्भीर ।
असुर सैन्यपर टूट पड़ा वह,
सिंह शिवा का वाहन धीर ॥

१२

मारा हातल मार किन्हीको,
मुखसे दिये बहुतसे चीर ।
दबा अधरसे खैंच बहुतसे,
उसने मारे दानव वीर ॥

१३

कितने ही सैनिक वीरोंके,
दिये नखों से उदर विदार।
बहुतों के शिर भिन्न कर दिए,
निज हाथों की थप्पड़ मार ॥

१४

कटे बाहु शिर वाले उसने,
किये अनेकों दैत्य महान।
केशर दिला किया औरोंकी,
छाती से शोणित का पान ॥

१५

क्षण भरमें उस सिंह महाशय,-
ने वह सेना करदी चूर्ण।
देवीका प्रधान वाहन जो,
क्रुद्ध होरहाथा परिपूर्ण ॥

१६

सुनकर असुर धूम्रलोचन का,
उस देवीसे भस्म निशेष।
और सभी सेनाका क्षयभी,
एकसिंहसे वह असुरेश ॥

१७

कोपित ऐसा हुआ कि जिसके,
ओंठ फड़कने लगे नरेश ।।
चण्ड,मुण्ड असुरों को फिर वह,
ऐसा देने लगा निदेश ॥

१८

अहो चण्ड ! हे मुण्ड ! बहुतसी,
सेनाओं को लेकर सङ्ग ।
जावो वहां शीघ्रही लाओ,
उस देवीको करके तंग ॥

१९

केश खैंच या बन्धन देकर,
लाओ यदि हो और विचार ।
तो फिर सब शस्त्रों, अस्त्रों से,
उसे वहाँ या तुमदो मार ॥

२०

उस दुष्टाके और सिंह के,
मारे जाने पर तुम साथ ।
शीघ्र चले आवो, न मरे तो,
बाँधलाइये सेना नाथ ॥

छटा अध्याय समाप्त हुआ

## सातवाँ अध्याय प्रारम्भ

१—ऋषिने कहा—

आज्ञा पाकरके वह दानव,
चण्ड, मुण्ड दोनों हो सङ्ग।
शस्त्र उठाकर चले हातमें,
सेनाएँ लेकर चतुरङ्ग॥

२

देखा उनने देवीको, उस,
हिमगिरिके शुचि स्वर्ग समान।
महा शिखर पर सिंह पीठ पर,
बैठी, करती मृदु मुसकान॥

३

उसे देख वे लेजाने को,
उद्यम करने लगे विशाल।
कई समीप गये देवी के,
और धनुष तलवार निकाल॥

४

तब अम्बाने उन असुरों के-,
ऊपर क्रोध किया नरपाल!।
उस प्रकोपसे उसका वह मुख,
तुरत होगया कृष्ण कराल॥

५

कुटिल भृकुटि वाले उसके उस,
भालपट्ट में से तत्काल।
खड्गपाश धरती झट निकली,
काली देवी महा कराल॥

६

नर मुण्डों की माला पहिरे,
करमें ले अद्भुत खट्वाङ्ग।
व्याघ्र चर्मको पहिरे भीषण,
मांस हीन थे सब शुष्काङ्ग॥

७

अति फैलाये मुख वाली वह,
जिह्वा लपकाती विकराल।
सिंहनाद से दिशा पूरती,
गड़ी गड़ी थी आँखें लाल॥

८

प्रबल वेगसे पड़ी सैन्यपर,
वह दानव गण करती घात।
वहाँ दैत्य सेना को अब वह,
खाने लगी क्रोध कर तात!॥

९

आगे पीछे तथा मध्य में,
स्थित योधा घंटाके साथ।
एक हाथसे ऐसे नाना-,
गजमुखमें डाले नर नाथ! ॥

१०

वैसे ही सैनिक, घोड़े, रथ,
और सारथी सब समकाल।
भीषण विधि कर निज दाँतोंसे,
चबा रही थी मुखमें डाल ॥

११

केश पकड़ कोईको मारा,
तथा किसीको गरदन भींच।
मरा पैर से दबकर कोई,
उरसे नष्ट हुए कुछ नींच ॥

१२

उन असुरों ने छोड़े उसपर,
जो जो अस्त्र, शस्त्र बलपूर।
पकड़े मुखसे उन्हें रोषसे,
दाँतों में ले किया विचूर ॥

१३

चल वाले उन खल असुरों की,
सभी सैन्य को मार दहाड़।
मर्दन किया, किन्हींको खाया,
और किन्हीं को दिया पछाड़॥

१४

मरे खड्गसे कई, कईखा-पडे,
महा खट्वांग प्रहार।
नष्ट हुए कुछ खल देवी के,
दाँतों के खा घाव अपार॥

१५

क्षणमें वह सारी सेना, यों,
नाशित हुई देख उस ठौर।
चण्ड नामका दानव दौड़ा,
उस भीषण कालीकी ओर॥

१६

भीमनेत्रवाली देवीको वरस,
मुण्डने शर अति घोर।
तथा हज़ारों चक्र फैंककर,
ढांकदिया था चारों ओर॥

१७

देवीके मुखमें घूसने से,
चक्र हुए शोभित उस काल।
जैसे बादल बीच बहुत से,
घुसतेहों रवि बिम्ब विशाल॥

१८

भीमनाद करती प्रकोप से,
उसने किया भयंकर हास।
तब उसके मुखमें दांतों का,
हुवा महा दुर्दर्श प्रकाश॥

१९

फिर देवी कर कोप खड्गले,
दौडी चण्ड दैत्य की ओर।
केश पकड़कर उसी खड्गसे,
काट दिया उसका सिर घोर॥

२०

मरे चण्डको देख मुण्ड भी,
दौडा उस देवी की ओर।
देवी ने उसको भी मारा,
हात घात से ३ सही ठोर॥

२१

बची खुची वह सब सेना भी,
हरी महा बल वीर्य निधान ।
चण्ड, मुण्डको मरे देखकर,
दौड़ भगी ले अपने प्राण ॥

२२

वह काली ले चण्ड, मुण्डके,
शिर, कर में कर अट्ट प्रहास ।
कहने लगी वचन ऐसे झट,
आकर उसी चण्डिका पास ॥

२३

महा पशू इन चण्ड, मुण्ड का,
मैंनेदिया तुम्हें उपहार ।
युद्ध यज्ञ में अब तुम जल्दी,
शुम्भ, निशुम्भदैत्य लो मार ॥

२४—ऋषि ने कहा—

वह चण्डी भी उसके लाये,
चण्ड, मुण्डको मरे निहार ।
कल्याणी कालीको ऐसे बोली,
सुललित वचन उदार ॥

२८

जो तू चण्ड, मुण्ड दोनों को,
ले आई है मेरे पास।
इससे तेरा नाम लोकमें,
चामुण्डा यह होगा ख्वास ॥

सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ

# आठवाँ अध्याय प्रारम्भ

१—ऋषिने कहा—

चण्ड दैत्य मर चुका तथा जब,
मुण्ड नष्ट होचुका नृपाल !।
और निहत होचुका सभी जब,
दानव दलका सैन्य विशाल ॥

२

तबतो महा प्रतापी क्रोधित,
होकर शीघ्र शुम्भ दनुजेश।
अपनी सारी सेनाओं को,
देने लगा यही आदेश ॥

३

आज छियासी दानव तुम सब,
निज निज सेना लेकर साथ।
सदा सैन्य लेजाँय कम्बु कुलके,
चौरासी सेना नाथ ॥

४

रण पर विक्रम करने वाले,
असुरों के कुल जाँय पचास।
धौम्रवंशके सौ कुल जावें,
मेरी आज्ञा सुनकर खास ॥

५

कालक दौहृद और मौर्यके,
तथा कालका के कुल जात।
रणके लिए सज्जहो निकलें,
मेरी आज्ञासे अचिरात॥

६

यों आज्ञादे दारुण शासन-,
वाला शुम्भ दैत्य दल नाथ।
निकला रणके लिए तुरतही,
सैन्य हजारों ले निज साथ॥

७

चण्डी ने भी उसकी भीषण,
सेना आती हुई निहार।
पृथ्वी और गगन के भीतर,
प्रत्यञ्चारव भरा अपार॥

८

तब केसरि ने भी उस रणमें,
अपनी गरज सुनाई घोर।
घंटा की ध्वनिकर अम्बाने,
उन्हें प्रवृद्ध करदिया और॥

९

उस निनाद को सुनकर सारे,
दानव सेनाने उस ठौर।
काली और सिंहको घेरा,
बाण बरस कर चारों ओर॥

१०

धनु प्रत्यंचा और सिंहके,
या घंटाके नाद अपार
निज निनादसे उस काली ने,
जीते अपना वदन पसार॥

११

इसी समयके वीच देवरिपु-,
वृन्द नाशके लिए नृपाल!।
असुरों के अभ्युदय हेतु अति,
वीर्य और बल भरे विशाल॥

१२

ब्रह्मा रुद्र कुमार आठ हरि,
इन्द्रादिकी शक्तियाँ खास।
निकल देहसे उसी रूपसे,
पहुँची उसी चण्डिका पास॥

१३

जिस सुरका जो जो था भूषण,
आकृति अथवा जो कुछ रूप।
सजके आईं सभी शक्तियाँ,
वैसे ही धर रूप अनूप॥

१४

अक्षमालिका और कमण्डल,
धरकर चढकर हँस विमान।
आई विधिकी शक्ति समरमें,
ब्रह्माणी धरकर अभिधान॥

१५

माहेश्वरी वृषभ पर बैठी,
अहि कङ्कण त्रिशूल कर धार
आई वहाँ, भाल पर जिसके,
शोभित थी शशिरेख उदार॥

१६

बरछी रखे हाथमें तीखी,
वाहन जिसका मोर अनूप।
कौमारी भी शक्ति वहाँ पर,
आई धर कुमार का रूप॥

१७

वैसे ही वैष्णवी शक्ति भी,
शीघ्र गरुड़ पर कर सन्स्थान।
आई शंख, चक्र, मुद्गर, धनु,
और खड्गभी धरे महान ॥

१८

यज्ञ वराह रूपधारि श्री-,
हरि की भी जो शक्ति अनूप।
वहभी आई वहाँ समर में,
धारण कर वाराही रूप ॥

१९

शक्ति नारसिंहीभी रणमें,
धर नृसिंहकासा तनु कान्त।
आई, जटाघातसे तारा गण-;
को करती क्षिप्त नितान्त ॥

२०

ऐरावत पर चढी इन्द्रकी,
शक्ति वज्र कर धरे सदैव।
आई वहाँ हजार नेत्रधर,
शोभित थी ज्यों इन्द्र तथैव ॥

२१

देव शक्तिगण सहित रुद्रने,
तब देवीको कहा पुकार
मेरी प्रीति हेतु तुम सारे,
असुरों को लो जल्दी मार ।

२२

तब देवी के तनुसे निकली,
अति ही भीषण महा कराल
शक्ति चण्डिका, सो शृगालिका,
सम था जिसका नाद विशाल ॥

२३

उस अपराजित महा शक्तिने,
कही रुद्रको वाणी खास ।
भगवन ! आप दूत बनजाओ,
शुम्भ, निशुम्भ दैत्यके पास ॥

२४

कहो शुम्भसे फिर निशुम्भसे,
जिनको छाया गर्व अपार ।
और और भी दैत्य वहाँ जो,
होवें रणके लिए तयार ॥

२५

इन्द्र त्रिलोकी का अधिकारी,
होवे, सुर पावे हवि भाग ।
जीना चाहोतो तुम जावो,
झट पाताल स्वर्ग को त्याग ॥

२६

यदि बलके घमण्ड से तुमको,
रण करने की होवे आश ।
तो आइये शिवायें मेरी,
हों खा तृप्त तुम्हारा मास

२७

दूतकर्ममें नियत कियाथा,
शिवको देवी ने हे तात ! ।
इससे वह शिवदूती ऐसे,
त्रिभुवन बीच हुई विख्यात ॥

२८

वे दानव भो शिवके मुखसे,
देवी की यह सुन कर बात ।
कात्यायनी जहाँ थी पहुँचे,
क्रोधपूर्ण होकर अचिरात ॥

२९

जाकर पहिले ही अम्बापर,
तीखे सायक, शक्ति, कटार- ।
वर्षाये अति कोप पूर्ण हो,
उस सुरारि ने वहाँ अपार ॥

३०

उस देवी ने उनके छोडे,
फरसा, बरछी, बाण, त्रिशूल ।
सबको नादित धनु से छूटे,
बाण मार कर किया विमूल ॥

३१

उस अंबाके आगे काली,
निज त्रिशूल से दैत्य विदार ।
फिरतीथी दानव वध करती,
देके निज खट्वाङ्ग प्रहार ॥

३२

पहुँची जाय वहीं ब्रह्माणी,
असुरों पर कुण्डी जल सींच ।
सबका बल हरलेती थी फिर,
तेजस भी लेती थी खींच ॥

३३

माहेश्वरी शूलसे रणमें,
और वैष्णवी चक्रप्रहार- ।
कर, दानवदलको दलती थी,
कौमारी बरछो से मार ॥

३४

ऐन्द्री के वज्र की चोट से,
हुए हजारों दानव चूर्ण ।
उदर विदीर्ण हुए भूमी पर,
रुधिर बहाते थे परि पूर्ण ॥

३५

तुण्ड घातसे विदलित करती,
दाढों से छाती को चीर ।
वाराही निज चक्र चोटसे,
मारे नाना दानव वीर ॥

३६

कई नखों से फाड़ गिराती,
खाती कई असुर उस ठौर ।
घूमरहीथी नारसिंहिका,
दिशा गरज से करती घोर ॥

३७

दैत्य डरे सुन शिव दूती के,
अट्टहास बहु महा विशाल।
गिरे भूमिपर जो रणमें वे,
उसने खाये सब उस काल॥

३८

मर्दन करते उस सेनाका,
मातृवृन्द को कुपित निहार।
रणसे प्राण बचाकर सारे,
सैनिक भागे कई प्रकार॥

३९

देख मातृगणसे पीड़ित हो,
भगते दैत्यों को नर पाल!।
लड़ने को आया अम्बासे,
रक्तबीज दानव उस काल॥

४०

जब उसके तनुसे भूमीपर,
होता एक रुधिर कण पात।
तो उससे उठताथा तत्क्षण,
वैसाही दानव हे तात!॥

४१

रक्तवीज वह लड़ा हाथमें,
गदा लिए ऐन्द्री के साथ ।
तब ऐन्द्रीने वज्रघात से,
रक्तवीज पर मारा हात ॥

४२

वज्र घातसे उसके तनुसे,
तुरत बहचली शोणित धार ।
उससे उठे दैत्य वैसेही,
जिनमें था वल वीर्य अपार ॥

४३

जितने उनके तनसे शोणित,
विन्दु गिरे रण वीच सुजान ।
झट उतने ही उठे दैत्य जन,
वैसेही वल विक्रमवान ॥

४४

वहाँ लड़े वेभी सब दानव,
रक्तवीज के शोणित जात ।
माताओं के साथ भयङ्कर,
करते थे शस्त्रास्त्र निपात ॥

४५

फिर जब इसका मस्तक विक्षत,
हुआ तीव्र खा वज्र प्रहार।
बहा रक्त वह उससे पैदा,
हुए निशाचर कई हजार॥

४६

रणमें फिर वैष्णवी शक्ति ने,
इसे चक्रसे मारा पूर्ण।
ताडन किया गदासे उसको,
ऐन्द्री महाशक्तिने तूर्ण॥

४७

विष्णुशक्तिके चक्र घातसे,
उसका रुधिर बहा पर्याप्त।
उससे उठे हुए दैत्योंसे,
प्रायः जगत हुआ सब व्याप्त॥

४८

शक्तिचोट कौमारी करती,
वाराही करती असि मार।
महा असुर उस रक्तबीज पर,
माहेश्वरी त्रिशूल प्रहार॥

४९

वह रजनीचर रक्तवींज भी,
रणमें हो कर कोपाविष्ट।
गदाघातसे माताओं का,
करता था परिपूर्ण अनिष्ट॥

५०

शक्ति, त्रिशूलादि की मारसे,
उसके तनुसे धरती वीच।
जो वहु गिरा रुधिर उससे झट,
हुए सैकडों दानव नीच॥

५१

उन लोहित जन्मा असुरोंसे,
सभी भरगया जब संसार।
तबतो सकल देवताओंके,
मनमें भय होगया अपार॥

५२

देख दुखी उस सुर समूह को,
शीघ्र चण्डिकाने यह बात।
कहा कालिकाको चामुण्डे!,
कर विस्तीर्ण वदन अचिरात॥

५३

मेरे अस्त्रघातसे उठते,
शोणितसे जो असुर अपार।
होते रक्तविन्दु से, उनका,
मुखसे जल्दी कर आहार॥

५४

इससे उठते असुरों को तू,
खाती हुई विचर रण बीच।
यों यह क्षीण रक्त होनेसे,
नष्ट होयगा दानव नीच॥

५५

तुमसे खायेहुए उग्र वे,
होंगे फिर न यहाँ उत्पन्न।
यों कह उसे अम्बिका करने-,
लगी शूलसे अब अवसन्न॥

५६

मुखसे करने लगी कालिका,
रक्तबीज का शोणित पान।
तब उसने भी किया गदासे,
उस चण्डीपर घात महान॥

५७

गदाघात वह किमपि वेदना,
चण्डी पर कर सका न भूप !

५८

उसके जिस जिस घायल तनुसें,
गिरी बहुत लोही की धार।
चामुण्डा उसको निज मुखसे,
करती रही तुरत स्वीकार ॥

५६

रणमें रक्तवीजसे दानव,
जो जो उत्थित हुए महान।
उन्हें खालिया चामुण्डाने,
उनका किया रुधिर सब पान ॥

६०

शूल, खड्ग, शर, वज्र, श्रृष्टियों,
से देवी ने किया प्रहार।
रक्तवीज पर जिसका शोणित,
चामुण्डा ने पिया अपार ॥

६१

शस्त्र सङ्घसे आहत होकर,
भरा भूमि पर गिरा निदान।
हे नर पाल! रुधिर निर्गत हो,
रक्तवीज वह दैत्य हान॥

६२

तब वे अतुल हर्ष में आकर,
लगे मनाने सुर आनन्द।
रुधिर मदोद्धत हुआ नाचने,
लगा समस्त मातृका वृन्द॥

आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

# नवाँ अध्याय प्रारम्भ

१—राजाने कहा—

यह देवीका चरित आपने,
मुझे विचित्र कहा भगवान् ! ।
रक्तवीजका निधन सहित,
औ अम्बाका महात्म्य महान ॥

२

फिर सुनने का इच्छुक हूँ मैं,
रक्तवीज का हुआ निपात ।
तब क्या किया निशुम्भ,शुम्भने,
वह आगेकी कहिए बात ॥

३—ऋषिने कहा—

रक्तवीजके मरने पर वे,
दोनों कोपित हुए महान-
शुम्भ,निशुम्भ,क्योंकि उस रणमें,
कई मरेथे दैत्य महान ॥

४

मरी देख निज महा सैन्यको,
क्रोधित होकर दानव नाथ ।
दौडा दैत्य निशुम्भ समरमें,
मुख्य सैन्य ले अपने साथ ॥

५

आगे पीछे तथा बगलमें,
उसके महा असुरथे खास।
होठ चबा, हो क्रुद्ध मारने,-
आये उस देवी के पास॥

६

आया बली शुम्भभी अपने,
बलसे घिरा हुआ अति तूर्ण।
रण कर शक्तिवृन्दसे, देवी,-
वध हित फिर हो क्रोधित पूर्ण॥

७

देवी और निशुम्भ शुम्भका,
फिरतो सङ्गर ठना महान।
प्रबल वर्षते हुए मेघ ज्यों,
कर भीषण शर वृष्टि प्रधान॥

८

उनके फैंके हुए शरोंको,
काटा झट निज बाण प्रचार।
जगदम्बाने उन्हें शस्त्रसे,
घायल किया अनेक प्रकार॥

९

तीखा खड्ग ढाल चमकीली,
 ले निशुम्भने सोचा दाव।
देवीके उत्तम वाहन उस,
 सिंह शीश पर मारा घाव॥

१०

वाहनके ताडित होने पर,
 देवी ने ले क्षुरप विशाल।
उस निशुम्भकी खड्ग तथा,
 अठफूली काट गिराई ढाल॥

११

टूटी जब तलवार ढाल तब,
 उसने फेंकी शक्ति प्रचण्ड।
चक्र मार उसके भी झटसे,
 किए चण्डिकाने दो खण्ड॥

१२

तब त्रिशूल फेंका निशुम्भने,
 देवी पर कोपित हो पूर्ण।
आते हुए उसे देवी ने मुक्का,
 मार किया झट चूर्ण॥

१३

गदा घुमाकर उसने फिरभी,
फैंकी उस देवीकी ओर।
मार त्रिशूल चण्डिकाने भी,
उसे भस्मकी उसही ठौर॥

१४

फिरले परशु हाथमें आते,-
हुए दैत्य पति को हे तात!।
गिरादिया देवीने भूपर शर,
समूहसे देकर घात॥

१५

भीम विक्रमी उस निशुम्भके,
गिरते ही, कर कोप विशाल।
उसका भाई शुम्भ अम्बिका,-
के वध हेतु चला नर-पाल!॥

१६

रथमें स्थित अति उच्च दैत्यने,
हातों में परमायुध धार।
अतुल भुजा आठों ऊँची कर,
व्याप्त किया आकाश अपार॥

१७

देख उसे आते देवी ने,<br>
शङ्ख बजाया अतिही घोर ।<br>
और धनुषकी प्रत्यञ्चा का,<br>
नाद असह्यकिया उस ठोर ॥

१८

निज घंटाकी ध्वनि से भरदी,<br>
दशों दिशायें भी भरपूर ।<br>
सब दैत्योंकी सेनाका जो,<br>
तेज सभी करतीथी दूर ॥

१९

फिर केसरि ने किया नाद जो,<br>
गज मद का भी करता नाश ।<br>
उससे दशों दिशायें पूरित,-<br>
हुई तथा गूँजा आकाश ॥

२०

तब कालीने उछल गगनमें,<br>
भूमी पर मारे दो हस्त ।<br>
उस भीषण ध्वनि से पहले के,<br>
नाद हुए सारे ही अस्त ॥

२१

शिवदूती ने अट्टहास अति,
क्रूर किया उस रणके बीच।
उन शब्दों से असुर डरे सब,
दानव क्रुद्ध हुआ वह नीच॥

२२

"ठहर दुरात्मा जरा" वचन यों,
कहा अम्बिकाने नर-पाल!।
आकाश स्थित सकल सुरोंने,
जयजय कार किया उस काल॥

२३

दैत्य शुम्भने आकर छोड़ी,
शक्ति भीम ज्वाला विकराल।
देवी ने उसको झट काटी,
शक्ति फेंक निज सु महा ज्वाल॥

२४

शुम्भदैत्यके सिंहनादसे,
व्याप्त हुए सब लोक विशेष।
उसने मार काटके सारे,
जीते सैनिक नाद अशेष॥

२५

शुम्भदैत्यके शर देवी ने,
और शुम्भने उसके तीर ।
अपने उग्र शरों से काटे,
कई हज़ारों, हे नृप वीर ! ॥

२६

तब कोपित होकर देवी ने,
किया शूल से तीक्ष्ण प्रहार ।
उससे हतहो मूर्छा पाकर,
गिरा भूमि पर वह उस बार ॥

२७

फिर निशुम्भने ज़राचेतना,-
पाकर ले बाण सन हात ।
मारा देवीको बाणों से,
काली और सिंहके साथ ॥

२८

फिर निशुम्भ दानवने अपनी,
दश हजार भुज बना तुरन्त ।
ढाँपदिया देवी को तीखे,
वर्षा कर के चक्र अनन्त ॥

२९

दुखहारिणि दुर्गादेवी ने,
क्रोधित होकर के उस काल।
निज बाणों से काटे उसके,
चक्र तथा वे बाण विशाल॥

३०

तब ले गदा वेगसे दौड़ा,
वह निशुम्भ असुरों का नाथ।
शीघ्र मारने को देवी को,
लेकर सारी सेना साथ॥

३१

आते ही देवी ने उसकी,
शीघ्र गदा करदी निर्मूल।
तीक्ष्ण खड्गसे, फिर झट उसने,
लिया हाथमें भारी शूल॥

३२

शूल लिए आते उस दानव,
रिपु- निशुम्भको करके वार।
वेग पूर्व वेधा छाती में,
चण्डी ने दे शूल प्रहार॥

३३

शूल भिन्न उसकी छातीसे,
निकला एक निशाचर और।
महावीर्य वलपूर्ण पुरुष वह,
"ठहर ठहर" यों कहता घोर॥

३४

शब्द समेत निकलता उसका,
शिर देवीने हँस अभिराम।
निज कृपाणसे काटदिया तब,
वो भूमी पर हुआ धड़ाम॥

३५

फिर मृगेन्द्रने खाये दानव,
शीश चबा दाढों से घोर।
कुछ शिवदूती ने भी खाये,
खाये कुछ काली ने और॥

३६

भेद भेद कर कौमारी ने,
किया कई असुरों का नाश।
ब्रह्माणीने मंत्रित जलसे,
पहुँचादिये कई यम पास॥

३७

रुद्रशक्ति के शूलघातसे,
बिंधकर पड़े कई भू बीच।
वाराही की तुण्ड चोटसे,
चूर हुए बहु दानव नीच॥

३८

चक्र मार कर विष्णु शक्तिने,
किये असुर दल दो दो खण्ड।
वज्र मार ऐंद्री ने बहुधा,
नाशकिये दानव उद्दण्ड॥

३९

डर कर मरे निशाचर केई,
कई भगे रणसे नर पाल!।
खाये शेष सिंह शिव दूती,
और कालिका ने तत्काल॥

नवाँ अध्याय समाप्त हुआ

# दशवाँ अध्याय प्रारम्भ

१

प्राण प्रिय भाई निशुम्भको,
रणभूमी में मरा निहार।
बोला नष्ट देख सेनाको,
कोपित होकर शुम्भ अपार॥

२

खल गर्वीली दुष्टे! दुर्गे!,
मतकर अब तू गर्व महान।
औरों का आश्रय लेकर तू,
लड़ती है करती अभिमान॥

३—देवी ने कहा—

मैं ही इस जगबीच एकहूँ,
नहीं दूसरी मुझसी और।
सब विभूतियाँ मुझसे ही ये,
खल! निहार मिलती इस ठौर॥

४

वे झटही देवियाँ समाईं,
सब ब्रह्माणी आदि अनेक।
उस देवी के तनुमें, रणमें,
अबतो रही अम्बिका एक॥

५—देवी ने कहा—

मैं विभूति से बहुत रूपधर,
जो स्थित थी इस रण के बीच।
उन सबको कर उपसंहृत मैं,
रही एक अबतो रह नीच॥

६—ऋषि ने कहा—

फिर प्रारम्भ हुआ देवीका,
उस निशुम्भ दानवके साथ।
देव, दानवोंके निहारते,
अति दारुण रण, हे नर नाथ!॥

७

बाण वृष्टिसे तीखे शस्त्रों,
अस्त्रों करिके बहुत प्रकार।
उन दोनों का हुआ घोर रण,
सारे लोकों को भयकार॥

८

अस्त्र, शस्त्र जो दिव्य सैकड़ों,
देवी ने दानव की ओर।
छोडे, उन्हें दैत्यने घातक,
शस्त्रों से काटा उस ठौर॥

९

देवी पर जो उसने छोड़े,
दिव्य शस्त्रगण बहुत प्रकार।
उन्हें शिवाने कौतुक से ही,
काट गिराया कर हुङ्कार॥

१०

फिर सौबाणों से देवीको,
आच्छादित करदिया निदान।
कुपित हुई देवीने, वे शर,
काटे तोड़ा धनुष महान॥

११

धनुष टूटने पर वह बरछी,
लेकर चला निशाचर नीच।
देवीने दे चक्र उसेभी,
काटी करकी करके बीच॥

१२

सौ चन्द्रों की किरणों वाली,
फिर वह करमें ले तलवार।
देवीके प्रति दौड़ा आया,
शुम्भ दानवों का सरदार॥

१३

आते ही उसका झट काटा,
चण्डी ने वह खड्ग महान।
धनुष छुटे तीखे बाणोंसे,
और ढाल रवि तेज समान॥

१४

धनुष टूटने पर देवीने,
काटे रथ, सारथि, हय और।
तब देवीको चला मारने,
वह दानव मुद्गर ले घोर॥

१५

काटदिया आतेही उसका,
मुद्गर तीक्ष्ण शरों को साध।
फिरभी वह दौड़ा देवी की,
ओर वेगसे मुष्टिक बाँध॥

१६

दैत्यराजने मुक्का मारा,
उस जगदम्बा के उर बीच।
देवी ने भी उस दानव के,
उरमें मारी थप्पड़ खींच॥

१७

तल प्रहार से मूर्छित हो वह,
गिरा मही पर बँधा न वार।
शुम्भ दैत्य राजा कुछ क्षणमें,
उठ वैसे ही हुआ तयार॥

१८

झपट चण्डिका को वह झटसे,
उडा उछलकर नभकी ओर।
किया वहाँ भी जगदम्बाने,
निराधार रण उससे घोर॥

१९

यह जो नभमें समर हुआ,
श्री देवीका दानव के साथ।
यही सिद्धमुनि विस्मयकारक,
सर्व प्रथम रण था नर नाथ!॥

२०

बहुत देर उससे देवीने,
नभमें करके समर विशाल।
ऊपर फेंक घुमाया उसको,
और दिया धरणी पर डाल॥

२१

फेंका हुआ भूमिपर आ, वह,<br>
मुक्का बाँध शुम्भ बलवान।<br>
दौड़ा देवीके हनने को,<br>
इच्छा करके दुष्ट महान ॥

२२

उस दैत्योंके अधिपति को फिर,<br>
सन्मुख आते हुए निहार।<br>
पटक दिया भूपर देवी ने,<br>
छाती में त्रिशूल से मार ॥

२३

देवी के त्रिशूलसे मृतहो,<br>
गिरा भूमिपर हे नरनाथ !।<br>
शुम्भ दैत्य वह कंपित करता,<br>
भूमी, द्वीप, उदधि, गिरि साथ ॥

२४

उस दुष्टात्मा के मरने पर,<br>
सुप्रसन्न जग हुआ अशेष।<br>
स्वास्थ्य मिला सम्पूर्ण विश्वको,<br>
नभ सब निर्मल हुआ, नरेश ! ॥

२५

बादल उत्पातों के जो थे,
उलकासहित हुए वे शान्त।
उसके मरने पर सब नदियाँ,
हुई सुमार्ग वाहिनी, कान्त॥

२६

हर्ष पूर्ण मनसे प्रसन्न अति,
हुए देवता गणभी सर्व।
उस दानवपति के मरनेपर,
गाने लगे ललित गन्धर्व॥

२७

कई बजाने लगे, अप्सरा,
लगी नाचने अब हे तात!।
सुरुचि हुआ रवि, और सुगन्धित,
शीतल मन्द चले सबवात॥

२८

शान्त दिशाओं में ध्वनि करती,
जलने लगी शान्त ही आग।

दशवाँ अध्याय समाप्त हुआ

## ग्यारहवाँ अध्याय प्रारम्भ

१

उस रणमें देवीने जब उस,
शुम्भ दैत्य का किया विनाश ।
इन्द्र सहित सब देव अग्निको,
आगे कर तब भरे हुलास ॥

२

की उस कत्यायनिकी स्तुतियाँ,
पूर्ण सिद्ध कर अपना काम ।
हुई प्रसन्न दिशाएँ जिनसे,
जिनके मुख विकसित अभिराम ॥

३

हे शरणागत की बाधाएँ,
हरने वाली ! हो सु प्रसन्न ।
मात ! सकल जगका परिपालन,
करने वाली हो सु प्रसन्न ॥

४

हो प्रसन्न विश्वेश्वरि रक्षा,
करो विश्वकी हो अवलम्ब ॥
तुम्ही चराचर सकल जगतकी,
एक ईश्वरी हो जगदम्ब ।

५

माता इस संपूर्ण जगतकी,
एक तुम्हीं आधार अनूप।
क्योंकि तुम्हीं स्थित हुई सोहती,
जगदाश्रितहो मही स्वरूप॥

६

और तुम्हीं तो हे जगदम्बा !,
निर्मल जल स्वरूप की धार।
हे दुर्लंघ्य पराक्रम वाली !
आप्यायत करती संसार॥

७

तुम्हीं विष्णु में रहने वाली,
शक्ति तुम्हारा वीर्य अनन्त।
तुम्हीं विश्वकी वीजरूपिणी,
तुमही माया परम दुरन्त॥

८

देवि सभी यह जगत चराचर,
संमोहित होरहा महान।
विश्ववीज तुम प्रसन्न होकर,
निश्चय वनती मुक्ति

९

हे जगदम्ब विभूति तुम्हारी,
ही है सब विद्याएँ वेद।
सारे जगकी सभी स्त्रियाँ है,
देवि! तुम्हारे ही हैं भेद॥

१०

तुमही एक अम्बने सारा,
व्याप्त कियाहै सब संसार।
तब हे अम्ब! तुम्हारी हमसे,
स्तुति हो सक्ती कौन प्रकार॥

११

जब तुम सकल भूतरूपाहो,
स्वर्गमुक्तिकी हो दातार।
तो,स्तुत हुई, तथा अब स्तुतिके,
लिए कौनहै उक्ति उदार॥

१२

कला और काष्ठा स्वरूपसे,
देतीहो सबको परिणाम।
हो समर्थ तुम विश्व अन्तमें,
हे नारायणि! तुम्हें प्रणाम॥

१३

सकल मङ्गलों की मङ्गलहो,
शिवे सिद्ध करती सब काम।
हे त्र्यम्बिके! शरण्ये! गौरी,
नारायणि है तुम्हें प्रणाम॥

१४

जन्मस्थिति संहारक्रियाकी,
शक्ति सनातन हो अभिराम।
हे गुणमये! गुणोंकी आश्रय,
नारायणि है तुम्हें प्रणाम॥

१५

दुखी दीन शरणागत जनकी,
रक्षाकरती हो निष्काम।
सबकी पीड़ा हरने वाली
हे नारायणि! तुम्हें प्रणाम॥

१६

हंसयान पर चढती, धरती,
ब्रह्माणी स्वरूप अभिराम।
कुश जल निक्षेपण करती तुम,
हे नारायणि! तुम्हें प्रणाम॥

१७

शूल चन्द्रमा भुजङ्ग धारिणि,
माहेश्वरी रखै शुचि नाम ।
महा वृषभपर तुम चढती हो,
हे नारायणि ! तुम्हें प्रणाम ॥

१८

कुक्कुट, मोर साथ रखती हो,
बरछी धरती तीक्ष्ण प्रकाम ।
कौमारी स्वरूपसे स्थितहो,
हे नारायणि ! तुम्हें प्रणाम ॥

१९

शङ्ख, शार्ङ्गधनु, चक्र, गदा, शर,
असिधर रखै वैष्णवी नाम ।
हो प्रसन्न हमपर हे देवी !
हे नारायणि ! तुम्हें प्रणाम ॥

२०

लिया हाथमें उग्र चक्रहै,
ली दंष्ट्रा पर पृथ्वी थाम ।
शिवे ! वराह रूप धारिणि,
हे नारायणि ! तुम्हें प्रणाम ॥

२१

किया उग्र नर हरि स्वरूपसे,
दानव बध प्रयत्न अविराम ।
त्रिभुवन पालन करने वाली,
हे नारायणि ! तुम्हें प्रणाम ॥

२२

मुकुट सीसपर, वज्र हाथमें,
उज्वल दृक सहस्र अभिराम ।
ऐन्द्री, वृत्र-प्राण हरती हो,
हे नारायणि ! तुम्हें प्रणाम ॥

२३

शिवदूती स्वरूपधर तुमने,
मारे दैत्य महा बलधाम ।
घोर रूपहो उग्रनादिनी,
हे नारायणि ! तुम्हें प्रणाम ॥

२४

दाढों से कराल मुख धरती,
मुण्डमाल भूषण अभिराम ।
हे चामुण्डे ! मुण्डविलोडनि !
हे नारायणि ! तुम्हें प्रणाम ॥

२५

लक्ष्मी, लज्जा तुमही विद्या,
श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा नव नाम।
ध्रूवा महा रात्री मायाहो,
हे नारायणि ! तुम्हें प्रणाम ॥

२६

हे मेधे, हे वरे सरस्वति,
सत्य और रज तम की धाम।
नियते ! ईश्वरि हो प्रसन्न तुम,
हे नारायणि ! तुम्हें प्रणाम ॥

२७

सबका रूप तुम्ही सर्वेश्वरि, !
तुमही सब विधि शक्ति समेत।
भयसे हमें बचाओ दुर्गे !
तुम्हे प्रणति है दयानिकेत ॥

२८

कात्यायनि हे देवि तुम्हारा,
तीन नेत्र युत मुख अभिराम।
हमें बचाओ सभी भयोंसे,
हम करते हैं तुम्हे प्रणाम ॥

२९

भीषण ज्वाला सहित उग्रयह,
असुर वृन्द का मृत्यु प्रकाम।
रक्षा करे त्रिशूल हमारी,
भद्रकालि हैं तुम्हें प्रणाम॥

३०

ध्वनि से तीनों लोक पूर्ण कर,
हरती दानव- तेज महान।
रक्षा करे दुरितसे घंटा,
हम पुत्रोंकी पिता समान॥

३१

असुरों के लोही चर्बीसे,
चर्चित यह उज्वल रुचिवान।
खड्ग सदा शुभ करे हमारा,
चण्डि करें हम तुम्हें प्रणाम॥

३२

रोग अशेष दूर करती हो,
जब तुम होती देवि प्रसन्न।
रुष्ट हुई सारे मनवाञ्छित,
काम तुरत करती उत्सन्न॥

३३

जो आसरा तुम्हारा लेवे,
दुःख न पावे किसी प्रकार।
तेरे आश्रय रहने वाले,
जगके आश्रय बनैं उदार॥

३४

हे जगदम्ब! आज जो तुमने,
किया समर भूमीमें खास।
धर्म - द्वेष फैलाने वाले,
महा महा असुरों का नाश॥

३५

भाँत भाँत के रूप बनाकर,
अपने तनुसे कई प्रकार।
और कौन करसकती है हे,-
देवि! कर्म यह महा उदार॥

३६

विद्याओं में तथा शास्त्रमें,
और विवेक तत्वमें धन्य।
कर्मकाण्ड आदिक वाक्यों में,
तुमसे देवि कौनहै अन्य॥

३७

जो इस अन्धकारमय ममता,-
रूपगर्त में कई प्रकार।
सभी विश्वको निज इच्छासे,
घुमारही है बारम्बार॥

३८

जहाँ निशाचर रहें, जहाँ हों,
क्रूर गरलसे भरे भुजङ्ग।
जहाँ शत्रुगण, और डाकुओं,-
का समूह करताहो तङ्ग॥

३९

जहाँ दवानल लगीहुई हो,
जहाँ उदधि हरता हो प्राण।
वहाँ आप स्थित होकर सारे,
लोकों का करती हो त्राण॥

४०

हे विश्वेश्वरि! सकल जगत का,
परिपालन करती हो आप।
विश्वात्मिके! चराचरको तुम,
अपने में धरती हो आप॥

४१

विश्वेशो से वन्दनीय तुम,
इसलिए होती हो अम्ब ॥
भक्ति पूर्व जो करें तुम्हें नति,
वे जगके होते अवलम्ब ।

४२

जिस प्रकार दानवदल वधसे,
अभी कियाहै त्राण विशाल ।
हो प्रसन्न हे देवि हमारी,
रिपु भयसे नित कर प्रतिपाल ॥

४३

तथा महा उत्पात जनित उप-,
सर्गों को भी करदो शान्त ।
पाप समस्त जगतके जल्दी,
देवि करो अब नष्ट नितान्त ॥

४४

प्रणत हुए हमपर प्रसन्नहो,
विश्व व्यथा हारिणि हे अम्ब ! ॥
हे त्रैलोक्य स्तुत ! लोकोंको,
वरदे भगवति कर न विलम्ब ।

४५—श्रीभगवती ने कहा—

वरदा श्री हूँ हेदेवो! लो,
माँगो वर इच्छा अनुसार।
मुझ से, मै देती हूँ तुमको,
जिससे हो जगका उपकार॥

४६—देवों ने कहा—

सब दुःखों का शमन शीघ्रहो,
त्रिभुवनकी अखिलेश्वरि मात!।
यही करो तुम देवि हमारे,
रिपुओं का विनाश अचिरात॥

४७—श्रीदेवी ने कहा—

अठाईसवाँ युग आने पर,
वैवस्वत मन्वन्तर बीच।
जब पैदा होंगे यह दोनों,
शुम्भ, निशुम्भ निशाचर नीच॥

४८

नन्द गोपके गेह यशोदा,
से उद्भव कर निज प्रकाश।
विन्ध्यांचल निवास करती मैं,
शीघ्र करूंगी उनका नाश॥

४६

फिर अति रौद्र रूपसे लेकर,
पृथ्वी तल पर मैं अवतार।
वैप्रचित्त दैत्योंके दलका,
शीघ्र करूँगी परि संहार॥

५०

उन अति उग्र निशाचर दलको,
भक्षण करतीहुई नितान्त।
मेरे दन्त लाल होवेंगे,
दाडिमके फुलों सम कान्त॥

५१

तब मुझको सुर स्वर्गलोकमें,
मर्त्यलोकमें नर बहु वार।
रक्तदन्तिका नाम ग्रहणकर,
किया करेंगे स्तुति व्यवहार॥

५२

फिर सौ वर्ष अकाल विनाजल,
होगा उसमें स्तुति 'मुनिवृन्द-।
मुझे सुनावेंगे अयोनिजा,
तबमैं होऊंगी स्वच्छन्द॥

५३

तब सौ नेत्रों से मुनियों को,
मैं देखूंगी वारं वार।
गावेंगे तब मनुज भूमिपर,
मुझे शताक्षी नाम उचार॥

५४

पीछे सकल लोकको मेरे,
तनुसे प्रगटाकर स्वच्छन्द।
प्राणप्रद शाकोंसे वर्षा,-
तक पालूँगी हे सुर वृन्द !॥

५५

तब मेरा होगा भूमीपर,
शाकंभरी नाम विख्यात।
तभी दुर्गनामी दानवको,
नष्ट करूँगी मैं अचिरात॥

५६

तब दुर्गा यह नाम भूमिपर,
मेरा होगा सिद्ध महान।
फिर जबमैं हिमगिरि पर अपना,
रूप बनाकर भीति निदान॥

५७

खा डालूँगी सभी दैत्यदल,-
को मुनियों का करने त्राण ॥

५८

तब सारे मुनिगण गावेंगे,
मेरे सु मधुर गुण दिन रात।
भीमा देवी तब यह मेरा,
होगा नाम परम विख्यात ॥

५९

अरुण नाम दानव त्रिभुवनको,
पीडा देगा जब परि पूर्ण।
तब मैं छै पद वाला मधुकर,
रूप बनाकर उसको तूर्ण ॥

६०

मारूँगी उस महा असुरको,
जबमैं तीनों लोक हितार्थ।
तब मेरा सब लोक करैंगे,
नाम भ्रामरी प्रगट यथार्थ ॥

६१

ऐसे जब जब दानव बाधा,
जगमें होगी विविध प्रकार ॥
तब तब मैं अवतार धारकर,
शीघ्र करूँगी खल संहार ।

ग्यारवाँ अध्याय समाप्त हुआ

---

# बारहवाँ अध्याय प्रारम्भ

१

इन स्तुतियों से मेरा जो नर,
तोष करेंगे नित्य सुजान ।
मैं उनकी सब विपदाओंका,
नाश करूँगी निश्चय जान ॥

२

मधुकैटभ का घात और खल,-
महिष निशाचर का संहार ।
पढ़े सुनेंगे जो वैसेही,
शुम्भ, निशुम्भ विनाश उदार ॥

३

जो अष्टमी और चौदशको,
या नवमी को धर अवधान ।
मेरी इस उत्तम महिमाको,
भक्ति पूर्व जो सुनें सुजान ॥

४

उनके कुछ दुष्कृत या दुष्कृत,-
से न विपद हो किसी प्रकार ।
कभी न इष्ट वियोजन होगा,
तथा न हो दारिद्र प्रचार ॥

५

रिपुओं, चोर, डाकुओं, अथवा,
राजाओं से किसी प्रकार ।
और शस्त्र, जल, अग्नि आदिसे,
कभी न होगा भय संचार ॥

६

इससे मेरी इस महिमाका,
किया चाहिए प्रतिदिन पाठ ।
तथा चाहिए सुनना इसको,
यहहै कल्याणों का ठाट ॥

७

महामारि से उठे सकलविध,
दारुणभी उपसर्ग नितान्त ।
तथा विविध उत्पातों को भी,
मेरी महिमा करती शान्त ॥

८

मेरे भवन मध्य जो इसका,
पाठ करै जन भली प्रकार ।
उसे कभी न छोड़ूँगी मेरा,
निकट भावहै वहाँ उदार ॥

९

बलि प्रदान हवन पूजन या,
होवे उत्सव किसी प्रकार ।
पढने सुनने योग्य सभी में,
है मेरे ये चरित उदार ॥

१०

जान अजान किसी विधिसे भी,
कियाहुआ पूजन बलिदान ।
करती हूँ स्वीकार प्रीतिसे,
होम अग्निमें कृत सविधान ॥

११

शरद कालमें मेरा वार्षिक,
जो पूजन होता सु महान ।
उसमें मेरी इस महिमा को,
सुन सभक्ति मानव मति मान ॥

१२

सब बाधाओं से छूटकर धन,
धान्यादिक सम्पत का गेह ।
होगा मेरे सुप्रसादसे,
इसमें नहीं जरा सन्देह ॥

१३

मेरी इस महिमाको सुनकर,
मेरी उपपत्तियाँ तथैव ।
रणमें पूर्ण पराक्रम होता,
तथा रहे जन निडर सदैव ॥

१४

रिपु होजाते नष्ट दिनोंदिन,
और प्राप्त होता कल्याण ।
आनन्दित होताहै कुल सब,
सुनकर यह माहात्म्य महान ।

१५

सभी शान्तीके कर्म जहाँ हों,
जहाँ स्वप्नहों दुःख समान ।
और उग्र ग्रह पीडाओं में,
यह महिमा मङ्गलकी खान ॥

१६

नष्ट उपद्रव होतेहैं सब,
ग्रह पीडाऐं होती शान्त ।
मनुजों के दुःस्वप्न शीघ्रही,
होजाते हैं इससे कान्त ॥

१७

बालग्रहसे दबे हुए सब,
बच्चोंका है सुखकर योग।
यह सङ्घटन भेद होने पर,
उत्तम मैत्री करण प्रयोग॥

१८

दुराचारियों को होती है,
इससे बलकी हानि सदैव।
राक्षस भूत पिशाचों का यह,
करे पाठ झट नाश तथैव॥

१९

यह मेरा माहात्म्य पठनके,-
द्वारा करता मुझे समीप।
पशु बलिदान और अति उत्तम,
पुष्पगन्ध शुभ धूप प्रदीप॥

२०

ब्राह्मणभोजन हवन तथा शुभ,
मार्जन आदिक कर्म अनन्त।
और प्रीति जो बहुभोगोंसे,
दानों से वत्सर पर्यन्त॥

२१

वह सब इसके एक बारभी,
सुनने से हो मुझे उदार।
सुना हुआ यह दे निरोगता,
और करे पातक संहार॥

२२

रक्षा करते हैं भूतोंसे,
मेरे जन्म कर्म गुण गान।
दुष्ट दैत्य-नाशक जो मेरा,
युद्धों में है चरित महान॥

२३

उसके सुनने पर रिपुओंसे,
मनुजों को भय हो न कदापि।
तुमने जो स्तुतियाँ, वा विधिने,
की, वेहैं सब श्रेष्ठ तथापि॥

२४

ब्रह्मा कृत स्तुतियाँ देती हैं,
पाठक को निर्मल मति दान।
जङ्गलमें अति दूर गया या,
दावानल से तथा महान॥

२५

सूने स्थलमें चोरों से वा,
हुआ वैरिगणसे आक्रान्त।
सिंह, व्याघ्र से घिरा हुआ भी,
तथा वन्य गजसे संभ्रान्त॥

२६

कुपित भूपसे वधकी आज्ञा,
पायाभी पहुँचा वध स्थान।
प्रयल वातसे भ्रान्त, तापसे,
एकान्त पयोनिधि बीच पयान॥

२७

बरस रहे हों शस्त्र शीश पर,
हो आरम्भ समर अति क्रूर।
इत्यादिक सब घोर संकटों,
बीच वेदना से भरपूर॥

२८

मुझे याद करते ही नरके,
सब संकट कटते तत्काल।
मेरे सुप्रभावसे सारे,
सिंह चोर, वैरी विकराल॥

२९

भग जाते हैं दूर सुमरते-,
हीं मेरा यह चरित विशाल।

३०—ऋषिने कहा—

यों कह वह भगवती चण्डिका,
जिसका विक्रम चण्ड महान।
देवोंके देखते देखते,
वहीं होगई अन्तरध्यान॥

३१

वे सुरभी भिर्भयहो अपने,
अपने पाकर सब अधिकार।
यज्ञ भाग पा सुखी हुए यों,
निज रिपुओं का कर संहार॥

३२

देवीसे उस शुम्भ दैत्यके,
मरने पर जो अति उद्दण्ड।
दारुण और लोकविध्वंसक,-
था जिसका बल महा प्रचण्ड॥

२३

उस निशुम्भका वध होतेही,
शेष भगे पहुँचे पाताल।

२४

इस प्रकार देवी जगदम्बा,
नित्याभी वह वारम्बार।
हो सुप्रगट जगतीकी रक्षा,
करती है हे भूप! उदार॥

२५

वही विश्वको पैदा करती,
वही इसे दे मोह महान।
तुष्ट हुई देती समृद्धि है,
याचित हुई वही दे ज्ञान॥

२६

हे नरेश! है व्याप्त उसीसे,
यह सारा ब्रह्माण्ड अनूप।
महाकालमें माहाकालिका,
धरती महामारि का रूप॥

३७

वही प्रलयमें मारी होती,
श्रृष्टिकालमें श्रृष्टि विशाल ।
वही सनातन सब भूतों की,
स्थिति करती है या स्थितिकाल॥

३८

उदय समयमे करती है वह,
लक्ष्मी होकर वृद्धि प्रदान ।
वही अभाव समयमें होती,
महा अलक्ष्मी नाश निदान ॥

३९

वह स्तुत हुई पुष्पगन्धादिक,
से संपूजित हुई प्रधान ।
करती है धन पुत्र और झट,
सद्गति धार्मिक बुद्धि प्रदान ॥

बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

# तेरहवाँ अध्याय प्रारम्भ

१—ऋषि ने कहा—

यह तुमको देवीकी उत्तम,
महिमा मैंने कही नृपाल ! ।
ऐसाहै प्रभाव उसका जो,
धरती है यह जगत बिशाल ॥

२

वही विष्णुमाया उत्पादित,
करती है यह निर्मल ज्ञान ।
उससे ही तुम और वैश्य यह,
तथा और सारे विद्वान ॥

३

मोहित हुए और होते हैं,
होंगे और मोहसे व्याप्त ।
उसी परम उत्कृष्ट ईश्वरी,-
को तू शरणागत हो प्राप्त ॥

४

सेवा करने से देती वह,
भोग स्वर्ग अपवर्ग तुरन्त ।

५—मार्कण्डेय ऋषि ने कहा—

यों उस मुनिकी बातें सुनकर,
वह लोकाधिप सुरथ सुनाम।
महाभाग बस प्रशस्त व्रतरत,
मुनिको कर साष्टाङ्ग प्रणाम॥

६

राज्य नाशसे तथा अधिकतर,
ममता से निर्विण्ण महान।
गया तुरतही तप करनेको,
साथ हुआ वह वैश्य सुजान॥

७

जगदम्बाके दर्शनको स्थिर,-
होकर बैठ नदीके तीर।
जपता देवी सूक्त लगा तपमें,
नृप और वणिक वह धीर॥

८

वे दोनों हो वहाँ बनाकर,
मृण्मय देवी - मूर्त्ति अनूप।
करते होम पूजते थे नित,
पुष्पचढा शुभ देकर धूप॥

९

निराहार नियमिताहारहो,
लगा शिवामें मन अवधान।
अपने तनुके रुधिर मांसका,
बलि देतेथे परम सुजान ॥

१०

तीन वर्ष तक यों सेवा की,
दोनों ने धर भाव अनन्य।
तब प्रत्यक्ष हुई जगदम्बा,
बोली उनसे हो सुप्रसन्न ॥

११—श्री देवी ने कहा—

जो तू नृपति चाहता है वह,
और वैश्य तूभी कुलवान।
मुझसे माँग वही मैं दूँगी,
मैं प्रसन्नहूँ निश्चय मान ॥

१२—श्री मार्कण्डेय ऋषि ने कहा—

तब नृपने निज जन्मान्तरमें,
माँगा अटल क्षत्र का राज्य।
और इसी भवमें प्रभावसे,
शत्रुनाश कर निज साम्राज्य ॥

१३

और परम ऐश्वर्यवान उस,
वैश्य रत्नने चाहा ज्ञान ।
ममता और अहन्ता नाशक,
तथा सङ्ग विध्वंस निदान ॥

१४—श्री देवी ने कहा

स्वल्प दिनों में ही हे राजन्, !
तुझे राज्य होगा सम्प्राप्त ।
शत्रु नाशकर तेरा अविचल,
फिर न कभी होगा भय व्याप्त ॥

१५

मर कर फिर भूपर तू लेगा,
सूर्य देवसे जन्म सुजान ।
मनु सावर्णिनामका होगा,
परम प्रसिद्ध इसे ध्रुव मान ॥

१६

और वैश्यवर तूने जो यह,
माँगा मुझसे वर मति मान ।।
मैं देती हूँ तुझे मोक्ष हित,
होगा झटही ज्ञान प्रधान ॥

श्री मार्कण्डेय ऋषि ने कहा—

इस प्रकार उन दोनों को वह,
देवी दे अभीष्ट वरदान ।
भक्ति पूर्ण उनसे स्तुत होकर,
तुरत होगई अन्तरध्यान ॥

१८

इस प्रकार वर पा देवी से,
सुरथ महान्रृप हो अचिरात ।
अवले जन्म सूर्यसे होगा,
मनु सावर्णि नाम विख्यात ॥

तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

---

दुर्गा पाठ पद्य हिन्दी में,
"दीन दिवाकर" किया उच्चार ।
सब मिलकर श्री जगदम्बा का,
करो जगत में जय जय कार ॥

---

॥ इति शुभम् ॥

भर्गव प्रेस, जयपुर ।

## "हिन्दी दुर्गापाठ" पर मान्य विद्वानों की कुछ सम्मतियाँ

### सत्संप्रदायाचार्य, महामहोपाध्याय, श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी

[ भूतपूर्व—संस्कृत पाठशालाध्यक्ष ]

सारस्वती-पीठ ब्रह्मपुरी,

जयपुर

भाद्र॰ शु॰ १ रविवार सं॰ १९९१

**हरो यस्यै हरिर्यस्यै वेधा यस्यै नमो व्यधात् ।**
**नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥**

यह सात-सौ मन्त्रात्मक सप्तशती एवं नन्दा, शताक्षी, शाकम्भरी आदि समष्टिरूप में सप्तसती जिसके आद्य उपासक ऋषि, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा थे ( यह ऋषि क्रम आगमिक है ) उसको असंख्य प्रणाम है ।

× × ×

इस भारतीय अनिर्वचनीय सर्वस्व स्वरूप, सप्तशती किं वा दुर्गापाठ का पं॰ श्री सूर्यनारायण चतुर्वेदी 'दिवाकर' कृत हिन्दी पद्यानुवाद यत्र तत्र देखकर संतोष हुआ । आपने सीधी भाषा में 'दुर्गापाठ' की कथा को सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित किया है । आशा है अब कथा प्रेमीगण इसके पारायण से सहज में ही लाभ उठा सकेंगे । इति

---

जयपुर राजसभा प्रधान परिडत, महामहोपदेशक, समीक्षा चक्रवर्ती

## विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदन जी ओझा

मैंने दुर्गासप्तशती का पं० सूर्यनारायण जी चतुर्वेदी-रचित पद्य-बद्ध भाषानुवाद पढ़ा। चतुर्वेदीजी ने यह ग्रन्थ रचकर हिन्दी-साहित्य की एक बड़ी भारी त्रुटी की पूर्ति की है जो साधारण जनता संस्कृत न जानने के कारण सप्तशती स्तोत्र के अलभ्य लाभ से वञ्चित रहती थी, वह अब सहजही में इससे लाभ उठा सकेगी। विशेष बात तो यह है कि आपने जहांतक हो सका है, वहांतक एक मन्त्र का अनुवाद एकही पद्य में किया है, और भाषा भी प्रसाद गुण पूर्ण लिखी है। जहां तक मुझे स्मरण है, मैं कह सकता हूँ कि चतुर्वेदीजी ने विदेशी शब्दों को तो अन्त्यजों की तरह दूरही रक्खा है। मैं इस काम के लिए चतुर्वेदीजी को धन्यवाद देता हुआ उन्हे आगे के लिए प्रोत्साहित करता हूँ कि वे ऐसे और भी कार्य करके जनता का उपकार करें।

# महामहोपाध्याय श्री पं. गिरिधर शर्म्मा जी चतुर्वेदी
## " व्याकरणाचार्य "
### प्रिन्सिपल संस्कृत कॉलेज जयपुर ।

पं० श्री सूर्यनारायण जी चतुर्वेदी " दिवाकर " के बनाये "हिन्दी दुर्गापाठ" का मैंने अवलोकन किया । यह मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत सप्तशती स्तोत्र ' दुर्गापाठ ' का अविकल अनुवाद है । मुझे अनुवाद में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं हुई । हिन्दी में ऐसे त्रुटि रहित, संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद बहुत कम निकलते हैं । जहां अनुवाद में आपका पाण्डित्य प्रगट हो रहा है । वहां छन्दों की प्रौढ़ता और मधुरता एवं सरसता से आपका प्रौढ़ कवित्व भी भावुक जनता को मुग्ध कर रहा है । खड़ी बोली की कविता इतनी मधुर कम देखी जाती है । मुझे आशा है कि इस ग्रन्थ से भावुक जनोंका बड़ा उपकार होगा । और यह हिन्दी कविता प्रेमियों से योग्य सम्मान प्राप्त करेगा । आशा है चतुर्वेदी जी इसी प्रकार की कविता से आगे भी काव्य रसिकों को तृप्त करने का प्रयत्न करते रहेंगे ।

भाद्र० शु० ६
सं० १९९१ वि०

गिरिधरशर्म्मा चतुर्वेदी ।

## रायबहादुर पुरोहित सर गोपीनाथ जी
### के. टी., सी. आई. ई. एम्. ए.
### विहारीपुरा हाउस
### जयपुर

१६—९—३४

श्री सूर्यनारायण जी चतुर्वेदी कृत हिन्दी दुर्गापाठ की पुस्तक को पढ़कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मैंने सप्तशती के कई पाठ किये हैं, श्री भगवती की लीला और विभूतियों का वर्णन जैसा दुर्गा-पाठ में है वैसा सुन्दर अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आया। दुर्गा-सप्तशती के और भी हिन्दी अनुवाद मैंने देखे हैं। चौबेजी का अनुवाद अनूठा है। आजकल की खड़ी हिन्दी के पद्य में प्रति श्लोकी अनुवाद करने में पण्डित जी ने वास्तव में कमाल किया है। सर्व प्रधान गुण इस अनुवाद में प्रसाद है। शब्द लालित्य भी जहाँ तहाँ इसकी मनोहरता को बढा रहा है। यह सब होने पर भी अनुवाद के यथार्थ होने में किन्चिन्मात्र भी अन्तर नहीं होने पाया है। पण्डित वर सूर्यनारायण जी का परिश्रम इस विषय में सर्वथा प्रशंसनीय है। पुस्तक परमोपयोगी और प्रत्येक शक्तिभक्त का बहुमूल्य आभूषण है।

जयपुर<br>
भाद्रपद शुक्ला ८ रविवार<br>
सम्वत् १९९१ वि०

गोपीनाथ।

श्री काशी नागरी प्रचारिणी सभा के डिंगल तथा राजस्थानी भाषा विभाग के प्रधान संपादक, इतिहास मर्मज्ञ

विद्याभूषण पुरोहित-

## श्री हरिनारायण जी बी० ए०

प्रियवर दिवाकरजी !

मैंने आपकी दी हुई "हिन्दी दुर्गापाठ" की प्रति को बड़े चाव से पढ़ा। ज्यों २ पढ़ता गया, मेरा चाव उत्तरोत्तर बढ़ता गया। महामाया श्री जगदम्बाजी के सप्तशती स्तोत्र दुर्गापाठ के सरल-अर्थ-प्रदर्शक इस आपके किये अनुवाद से मुझे जो आनन्द इसके पाठ का आया, वह अन्य किसी भी टीका वा अनुवाद से नहीं आया। अनुवाद के पढ़ते और समाप्त करते समय मुझे भारतेन्दुजी का वह सार-भरा वाक्य याद आया कि "बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल" आपके अनुवाद ने आपही के प्रेमीमित्र और बन्धु स्व० पु० रामप्रतापजी के "कृष्ण-विज्ञान" को बराबर २ खड़ा कर लिया। १२ वर्ष पहिले भगवद्गीता, उनके निरन्तर परिश्रम से, उस अनुवाद रूपी पोशाक में साहित्य संसार में आविर्भूत हुई थी। तो आज आपके लगातार परिश्रम और तल्लीनता का फल भगवती की सप्तशती

इस सुन्दर वेष भूषा और शृंगार से हिन्दी जगत में अवतरित होती है। संस्कृत साहित्य के ये दो अति विख्यात वहुलतर पाठ-पठन-साध्य धर्म-कर्म-सिद्धि प्रदायिक रत्न रत्नाकर ग्रंथ हिन्दीभाषा की प्रचलित शैली-"खड़ी बोली"-में प्रकाशित होकर मानो एक प्रकार से युगान्तर करने में अग्रसर होते हैं। और इस खड़ी बोली की प्रतिष्ठा और श्रीवृद्धि ऐसे ही उत्तम और रुचिकर रचनाओं से हो सकेगी, यह मेरा आन्तरिक भाव और इस विषय में श्रद्धा का हेतु है। "श्री कृष्णविज्ञान" भगवान् की सप्तशती हैं तो "हिन्दी दुर्गापाठ" भगवती की सप्तशती है। दोनों अनुवादों में वही एक प्रकार का छंद है। श्लोकों के अनुवाद को पढने से अनुवादसा नहीं प्रतीत होता। वरं मौलिकता का सा स्वाद मिलता है। भाषा सरल और सुबोध तथा शुद्ध है। मूलका आशय में यथार्थ लानेकी पूर्ण चेष्टा की गई है। कहीं कहीं तो अक्षरार्थ ज्यों का त्यों रहकर भी उसने भाषा का मुहाविरा और प्रकृति की यथार्थता को पूर्णता के साथ निवाहा है। कहीं भी भाव और प्रयोजन स्थानान्तरित होकर छूटने या टूटने नहीं पाया है। यह इस अनुवाद की विशेषताहै। भाषा प्रेमियों और अर्थ के इच्छुक पुरुषों को यह दर्पण के समान ज्ञान प्रदान करने में सहायक होगा और अर्थ के अनेक लाभ देने में सुविधा करदेगा। मूलमात्र का पाठ आस्तिकों की श्रद्धा के सहारे चाहे कितना ही किया जाय। शास्त्रा-

शानुसार उसका अर्थ-ज्ञान न होने से पूर्ण फल नहीं मिलता। जो संस्कृतज्ञ हैं उनकी बात छोड़ दीजे। मैं तो उनके लिये भी कहूँगा कि, इनको भी आंतरिक सुख मातृभाषा में अर्थ समझने से मिल सकता है। इस स्थिति में यह भाषानुवाद सब पाठ करने वालों और दुर्गापाठ के तत्व को समझने की उत्कंठा रखनेवालों को एक चिन्तामणि का काम देगा। हिन्दी साहित्य भंडार में इसके प्रकाशन से वृद्धि होही जायगी। उधर इस ग्रन्थ के इस अनुवाद से शास्त्रीय ज्ञान की वृद्धि से लोक में धर्म लाभ की वृद्धि होती रहेगी।

भाषा में कई अनुवाद हैं। हमारे यहां के ही महाकवि कुलपति जी मिश्र का अनुवाद "दुर्गा भक्ति चन्द्रिका" संवत १७४५ का निर्मित—आज से कोई अढ़ाई सो वर्ष पहिले का तो केशवदास की रामचन्द्रिका के सदृश यह भी अनेक छन्दो में बना है। परंतु हम कहेंगे कि एक छन्द ही में अनुवाद रहना अधिक सुविधा ज्ञान ध्यान में देता है जैसा कि यह भाषा का "दुर्गापाठ" आपका। अनेक छन्दों को पढ़ने से विक्षेप होता है, मन बटता है। संस्कृत की टीकाएँ संस्कृत समझनेवालों ही को उपयोगी होती है। कम पढ़े लोगों को तो यही या ऐसेही भाषा रूप से भगवती की कथा और उसके ज्ञान ध्यान में सुख मिलता है [ कुलपतिजी के ही शब्दों में "दुर्गा भक्तनु कौं सुखदाई" होती है। एतावता यह

"हिन्दी दुर्गापाठ" भाषा संसार में दुर्गा देवी के ज्ञान ध्यान का सार प्रचार में निश्चयही पाठका आधार रहेगा। आपको इस सदुद्योग में सफलता प्राप्ति के लिये हार्दिक बधाई है। आपको भगवती चिरायु और यशस्वी करें ! भाषा भण्डार की वृद्धि आपके उत्साह और परिश्रम से होती रहे यही आशा और आशीर्वाद है !
तथास्तु।

"हिन्दी दुर्गा-पाठ" बना है सुखद सुरुचिकर शुद्ध सुढार।
कवि सु-"दिवाकर" की रचना ने श्री दुर्गाका किया प्रचार॥
चन्द्र अंक अंक भू संवत् (१९९१) नवरात्रिन में ले अवतार।
श्री दुर्गा के दिव्य स्तोत्र का पाठ करें सब बारम्बार॥१॥

जयपुर
ता० २० ९-३४ ई०

सुखाकांक्षी—
पुरोहित हरिनारायण शर्म्मा।

## पं० सूर्यनारायण जी शर्मा व्याकरणाचार्य,

### (संस्कृत प्रोफेसर महाराजा कॉलेज जयपुर)

दिवाकरोपनामक पं० सूर्यनारायण जी चतुर्वेदी द्वारा अनुवादित "हिन्दी दुर्गापाठ" का मैंने अवलोकन किया। अनुवाद मूल से मिलता हुआ होने पर भी सरल, सुबोध तथा प्रभावोत्पादक है। भारतवर्ष में सप्तशती के प्रतिदिन सहस्रों पाठ होते हैं। नवरात्रों में तो इसके पाठ का बहुतही प्रचार है। परंतु पाठ करने वाले प्राय: मूलमात्र तो पाठ कर लेते हैं पर व्याकरण, काव्य, कोषादि के अध्ययन की न्यूनता के कारण अर्थ समझने में असमर्थ रहते हैं। इस अनुवाद ने यह त्रुटि पूर्ण करदी अर्थात् इसके पढ़ लेने से साधारण योग्यता का मनुष्य भी श्री दुर्गा सप्तशती के गम्भीर अर्थ को समझकर, दिव्य भावना उत्पन्न कर सकेगा। यह अनुवाद मूलानुसारी तथा सुबोध है। हम इसका प्रचार चाहते हैं।

× × × × ×

## पं० प्रभुनारायण शर्म्मा "सहृदय"

### साहित्यरत्न, नाट्याचार्य,

दुर्गापाठ—मूल—मन्त्रों की वैभव—रेखी,<br>
हिन्दी दुर्गा-पाठ 'दिवाकर' कृत में देखी।<br>
रहा मूल अनुकूल न मौलिकता बिगड़ी है,<br>
भाषा भव्य, प्रवाह-धार सुन्दर तगड़ी है॥

श्री 'सप्तशती' का

हिन्दी दु को स्मरण है,

इस विष ही है।

भग और सारगर्भित

'हिन्दी दुर्गा पाठ' सभी प्रेमी जनों के लिए उपादेय है। भाषा सरल एवं मधुर है। इस की विशेषता मूल के प्रत्येक मंत्र का अनुवाद, हिन्दी के एक ही पद्यमें होना है। 'सप्तशती' का ऐसा सुन्दर एवं मूलानुसारी सरल अनुवाद, आजतक मेरे देखने में नहीं आया। चतुर्वेदोजी हिन्दी साहित्य के प्रेमी तथा विद्वान हैं। आपकी रचनाएँ बड़ी सरस और गौरवास्पद होती हैं। आप अपने समय के विशेष भागका हिन्दी की सेवा में ही उपयोग करते हैं। आपको प्राचीन पुस्तकें संग्रह करनेका व्यसन सा है। आपका मीराँ-जी के पदों का तथा तानसेनजी के ध्रुपदों का संग्रह अद्वितीय है इसके अतिरिक्त आपने कई पुस्तकों का संपादन किया है। उन सबकी उपयोगिता उनके प्रकाशनसे ही ज्ञात होगी। चतुर्वेदीजी का यह प्रयास जनता के कल्याण और हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की दृष्टि से सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

आशा है कि चतुर्वेदीजी के ग्रन्थों का जनता सत्कार करके उनको उत्साहित करेगी।

## प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें

(१) मीराँजी के पदों का वृहत्संग्रह

(२) ढूँढाड़ी-गीत

(३) जयपुर राजवन्श परिचय

(४) तानसेनजी के ध्रुपद

(५) नृत्य कौमुदी

सूचना मात्र से ग्राहक श्रेणि में नाम लिख-लिया जाता है और छपते ही २० सैकड़ा कमीशन काटके वी० पी० द्वारा पुस्तकें भेजदी जाती हैं।

व्यवस्थापक—
सत्साहित्य कार्यालय
शक्ति-सदन, जयपुर

सोल ऐजेन्ट—राजस्थान पुस्तक मन्दिर,
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर।